वर्ष ४३] * * * * [अङ्क १०

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,६०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक २०२६, अक्टूबर १९६९

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—मायाविवश नारदका भगवान्‌को शाप [संकलित—श्रीरामचरितमानस] ···	११७७
२—कल्याण ('शिव') ··· ···	११७८
३—महात्मा गांधीके प्रति श्रद्धाञ्जलि (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ···	११७९
४—परमार्थकी पगडंडियाँ ···	११८०
५—गंदा साहित्य और सिनेमा (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य संदेश) ··· ···	११८५
६—चन्द्रलोक-यात्रा और भारतीय शास्त्र (पूज्यपाद स्वामीजी अनन्तश्री श्रीकरपात्रीजी महाराज) ···	११८८
७—चन्द्रलोक और चन्द्रदेव (स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी महाराज) ···	११९०
८—गायत्री-मन्त्रका रहस्य और समीक्षा (श्रीविजयशंकरजी द. दवे) ···	११९३
९—संसार-सत्य [कविता] (श्रीजगन्नारायण-देवजी शर्मा, 'कविपुष्कर' शास्त्री) ···	११९६
१०—श्रीराधामाधवका दिव्य स्वरूप (श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सं० २०२६ पर, गोरखपुर, गीतावाटिकामें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ··· ···	११९७
११—श्रीराधामाधव-जयजयकार [कविता] ···	१२०७
१२—श्रीविष्णु या पुरुषोत्तम-तत्त्व (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ···	१२०८
१३—श्रीकृष्णनाम [संकलित पद्य] ···	१२११
१४—श्रीराधाके प्रति [कविता] (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')	१२१२
१५—आज मानव क्या कर रहा है ! ···	१२१३
१६—वेदमें व्याहृति-विचार (डॉ० श्रीसिद्धनाथजी शुक्ल) ··· ···	१२१४
१७—मानव-जीवनका लक्ष्य [कविता] ···	१२१६
१८—मानसका स्वान्तःसुखाय (डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव,' एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ···	१२१७
१९—निर्विकारिताकी साधना (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ··· ···	१२२०
२०—रूसी महिलाकी राधा-कृष्णके प्रति भक्ति (श्रीविश्वम्भरसहायजी प्रेमी) ···	१२२५
२१—कामके पत्र ··· ···	१२२६
२२—भगवन्नाम-जप (नाम-जप-विभाग—कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर) ··· ···	१२२९
२३—पढ़ो, समझो और करो ···	१२३२

चित्र-सूची

१—अर्जुनको उपदेश	(रेखाचित्र) ···	मुखपृष्ठ
२—नारदका कोप	(तिरंगा) ···	११७७

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

नारदका कोप

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

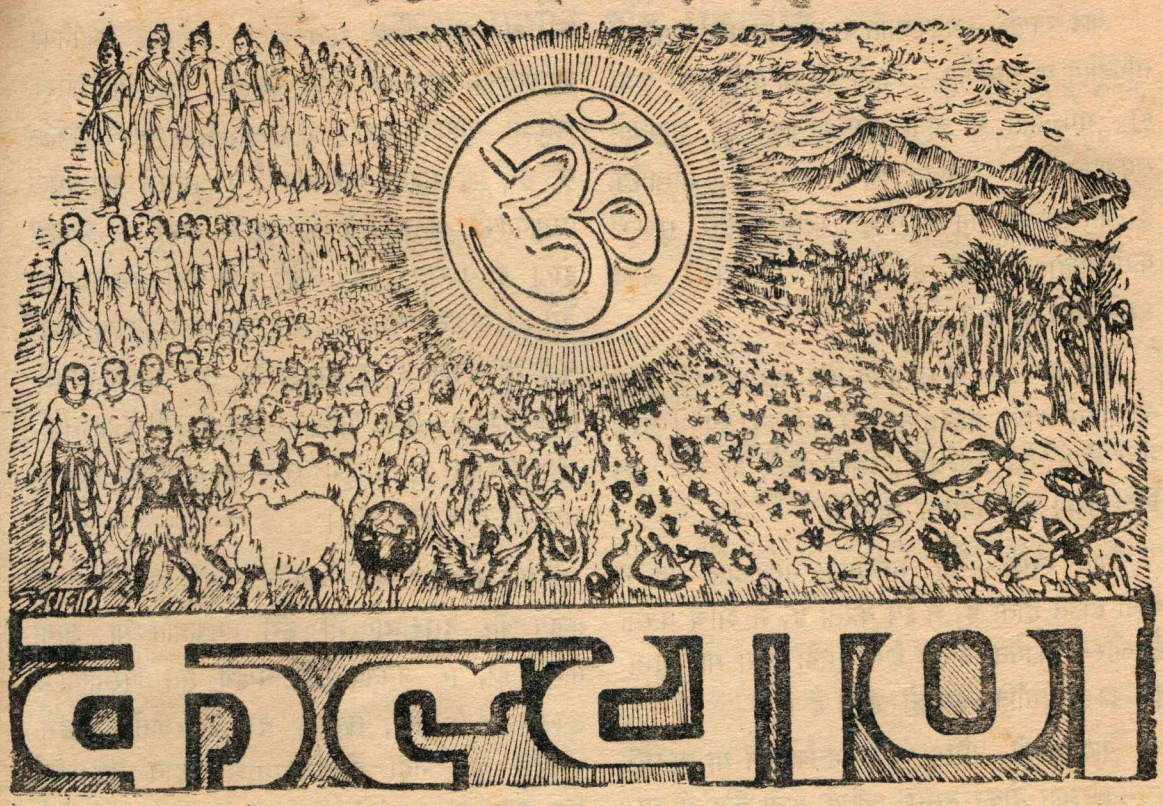

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥

वर्ष ४३ } गोरखपुर, सौर कार्तिक २०२६, अक्टूबर १९६९ { संख्या १० पूर्ण संख्या ५१५

मायाविवश नारदका भगवान्‌को शाप

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू । बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू ॥
डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा । अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ॥
भले भवन अब बायन दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १३६के बाद)

याद रक्खो—भगवत्प्राप्ति या ज्ञान निष्काम कर्मयोग, भक्तियोग या ज्ञानयोग—किसी भी साधनके द्वारा हुआ हो, भगवत्प्राप्त या ज्ञानी पुरुषका चित्त हर अवस्थामें समतापन्न और अव्याहत शान्त रहता है। सांसारिक दुःखोंमें उसका मन उद्वेगरहित रहता है और सुखकी कभी स्पृहा ही नहीं होती। राग, भय, क्रोध आदि उसमें रहते ही नहीं।

याद रक्खो—वह सांसारिक प्रिय कहलानेवाली वस्तुकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होता और अप्रियकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होता; वह स्थिरबुद्धि, संदेहरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष नित्य ब्रह्ममें एकात्म-स्थित रहता है।

याद रक्खो—वह भगवत्प्राप्त भगवत्प्रिय भक्त न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोच करता है और न कामना करता है। उसके द्वारा सारे शुभाशुभका भलीभाँति त्याग हो जाता है।

याद रक्खो—ऐसा पुरुष भगवत्प्राप्ति या ज्ञानरूप लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक अन्य कुछ भी लाभ मानता ही नहीं। इस भगवत्प्राप्त-स्थितिमें वह बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

याद रक्खो—भगवद्गीताके उपर्युक्त वाक्योंके अनुसार भगवत्प्राप्त पुरुष समस्त सांसारिक द्वन्द्वोंसे अतीत हो जाता है। उसमें आलस्य, जडता, संकीर्णता, ईर्ष्या, मोह, काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, मद, हिंसा आदि दोष तो रहते ही नहीं। दैवी सम्पदाके सद्गुणोंका स्वाभाविक विकास हो जाता है और वे सहज ही बढ़ते रहते हैं; पर वह अपनेको इन गुणोंके कारण गुणी नहीं मानता। उसके मनमें गुणाभिमान नहीं होता। वह सद्गुणोंको लेकर अपनेको बड़ा नहीं मानता। जैसे सूर्यमें सहज ही प्रकाश रहता है, वैसे ही उसमें सहज ही दैवी सम्पदाके सद्गुणोंका विकास रहता है।

याद रक्खो—आध्यात्मिक साधनाके साथ चरित्रका अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई अपनेको आध्यात्मिक साधनमें उन्नत मानता हो और उसके चरित्रमें पवित्रता तथा दैवी सम्पदाके गुणोंका विकास न हो, यह सर्वथा असम्भव है। अन्तरमें यदि सत्य परमात्माकी अनुभूति है तो उसका बाहर भी प्रकाश होगा ही। सूर्यके साथ जैसे रात्रि नहीं रह सकती, वैसे ही भगवत्-प्रकाशके साथ पापमूलक विषयान्धकार नहीं रह सकता। यह कसौटी है—इस बातको जानने-परखनेकी। हमारी आध्यात्मिक उन्नति हो रही है या नहीं, यदि हो रही है तो दैवी सम्पदाके गुणोंका प्रकाश तथा परिवर्द्धन होगा ही।

याद रक्खो—कोई अपनेको भगवत्प्राप्त या ज्ञानी बताये और दूसरे लोग भी उसे भगवत्प्राप्त या ज्ञानी मानते हों, पर जबतक उसे यथार्थ सत् परमात्माकी उपलब्धि नहीं होती, तबतक बड़ी-बड़ी बातोंके कहने-सुननेसे कुछ नहीं होता। मुझे महान् ब्रह्म-पदार्थ मिल गया, यह कहनेसे काम नहीं चलता; उस पदार्थकी प्राप्तिके साथ-साथ सारे अभावोंका नाश हो जाना चाहिये। उसकी प्राप्तिके बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहना चाहिये।

याद रक्खो—इस भगवत्प्राप्ति या ज्ञानकी कसौटी है—अहंता, ममता, राग, कामना, वासना तथा इनके कारण उदय होनेवाले समस्त दुर्विचारों और दुर्गुणोंका नाश। चित्तमें अखण्ड अनन्त शान्ति, एकमात्र परमानन्दसागरमें एकात्मता।

याद रक्खो—इसीके लिये योगके यम-नियम, भक्तिके दास्यादि रस, ज्ञानके साधन-चतुष्टय, मनुकथित दस मानवधर्म आदि साधन बतलाये गये हैं और भगवत्प्राप्तिका एकमात्र लक्ष्य रखकर निष्कामभावसे यथारुचि सावधानी तथा लगनके साथ इन साधनोंका सेवन करना चाहिये।

'शिव'

महात्मा गांधीके प्रति श्रद्धाञ्जलि

इस युगके महापुरुष महात्मा गांधीकी शतवार्षिकी जयन्ती देशमें मनायी जा रही है, उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण की जा रही है और इस निमित्तसे उनके गुणोंका स्मरण हो रहा है, यह जनसमाजके लिये बहुत ही कल्याणकारक है। उत्सव, व्याख्यान, प्रदर्शन आदि सभी अपने-अपने स्थानपर न्यूनाधिक महत्त्व रखते हैं, पर उनके प्रति असली श्रद्धाञ्जलि अर्पणका स्वरूप तो है उनके सद्गुणोंका स्मरण और उनको अपने जीवनमें धारण करना। यहाँ उनके ऐसे कुछ गुणोंका स्मरण किया जा रहा है—

१. प्रतिदिन दोनों समय रामधुन और प्रार्थना करना।

२. हर समय रामनामका स्मरण करना तथा नियमित भी नाम-जप करना।

३. त्रिविध रोगोंके नाशके लिये राम-नामका परम श्रद्धाके साथ प्रयोग करना।

४. शत्रु-मित्र सभीका भला चाहना, शत्रुका भी सम्मान और उपकार करना।

५. दूसरोंकी बुराइयोंको मिटानेके लिये तथा आत्मशुद्धिके लिये स्वयं तपस्या-अनशनादि व्रत करना। दबाव डालकर स्वार्थसाधनके लिये नहीं।

६. देशके गरीबोंके साथ सच्ची सहानुभूति रखना, 'राजनीतिक सहानुभूति' नहीं।

७. गरीबीका बाना धारण करना; सब प्रकारकी आरामतलबी—विलासिताका त्याग करना।

८. सादा कमखर्चीला जीवन, खान-पान-व्यवहार करना, जीवनको सदा संयमित रखना।

९. अत्यन्त अपरिग्रही होकर रहना।

१०. निर्भयता तथा कर्तव्यपर अडिग स्थितिके साथ ही सदा विनम्र रहना।

११. सभी धर्मोंके प्रति सच्ची आदरबुद्धि रखना, पर स्वयं हिंदू-सनातनधर्मपर श्रद्धा रखकर धर्मपरायण बने रहना।

१२. गोरक्षाके लिये सर्वत्यागको तैयार रहना।

१३. अधिक बात न बनाकर काम करना।

१४. बुराईका जवाब भलाईसे, हिंसाका जवाब अहिंसासे देना।

१५. जीवनका एकमात्र उद्देश्य परम सत्य परमात्माकी प्राप्ति या आत्मसाक्षात्कार मानना और जीवनके सभी कार्य—यहाँतक कि स्वराज्यप्राप्तिका कार्य भी आत्मसाक्षात्कारके साधनरूपमें ही करना।

उनके इन महान् गुणोंको भारतवासी, खास करके अपनेको उनका अनुयायी बतानेवाले और बात-बातपर उनके नामकी दुहाई देनेवाले लोग भूल रहे हैं—प्रायः भूल गये हैं। इसीसे आज देशभरमें उच्छृङ्खलता, घृणा, द्वेष, हिंसा, एक दूसरेको गिरानेकी चेष्टा और परस्वापहरणके प्रयत्न जोरोंसे चल रहे हैं। ऐसी अवस्थामें हमारी श्रद्धाञ्जलिका क्या अर्थ होगा? भगवान् हमलोगोंको सद्बुद्धि दें, जिससे हम उन महात्माको अपने कर्मोंके द्वारा सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर सकें।

मुझपर उनका बहुत पुराना स्नेह था। बड़ी निकटकी आत्मीयता थी और वह अन्ततक रही। 'कल्याण'के साथ तो उनकी स्मृति जुड़ी हुई है। 'कल्याण'में बाहरी विज्ञापन न छापने और पुस्तकोंकी समालोचना न करनेका सिद्धान्त उन्हींकी सम्मतिसे स्वीकार किया गया था, जो अबतक भगवत्कृपासे चल रहा है। हम गीताप्रेस तथा कल्याण-परिवारके सभी लोग उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

परमार्थकी पगडंडियाँ

भगवदनुराग होनेसे विषय-विराग हो ही जाता है। अमृतका स्वाद मिलनेपर विषकी घूँट भला कौन पीयेगा? परंतु सत्य भगवदनुरागकी उत्पत्तिके लिये विषय-विरागकी जरूरत कुछ पहले भी होती है। इसीसे 'अभ्यास-वैराग्य' दोनोंका साधन साथ-साथ करनेकी भगवान्‌ने आज्ञा दी है। भगवान्‌में चित्त लगानेका अभ्यास करना चाहिये और विषयोंसे अनासक्त होते रहना चाहिये। ज्यों-ज्यों विषयोंसे चित्त हटेगा, त्यों-त्यों भगवान्‌में लगेगा और ज्यों-ज्यों भगवत्प्राप्तिका आस्वाद मिलेगा, त्यों-त्यों विषयोंसे यथार्थ वैराग्य होता चला जायगा। इस प्रकारसे उच्चात्युच्च भगवत्प्रीतिको पानेके लिये भगवान्‌का आश्रय ही परम साधन है। ज्यों-ज्यों अहंकारका आश्रय छूटेगा, त्यों-त्यों भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होगा और चित्तमें भगवान्‌के प्रति निर्भरताकी भावना उत्पन्न होगी। यही भगवत्-निर्भरता आगे चलकर हमें सम्पूर्णरूपसे परमात्मा (श्रीनारायण) के चरणोंमें समर्पण कर देगी। तब हमारे शरीर, मन, बुद्धि या यों कहना चाहिये कि अपना कहलानेवाले सभी पदार्थोंपर भगवान्‌का एकाधिकार हो जायगा। हमारे सब कुछके स्वामी श्रीभगवान् हो जायँगे। उस समय हम पूर्ण परतन्त्र हो जायँगे—वैसे ही जैसे काठकी पुतली नचानेवालेके हाथ हो जाती है। वह जैसे हिलाता है, वैसे ही हिलती है। अपनी कुछ भी इच्छा करना तो दूर रहा, उसे कभी जिस मनमें इच्छा उत्पन्न होती है, उस मनके अस्तित्वका भी भान नहीं होता। यहाँतक कि अस्तित्वका अनुभव करनेवाला अहंकार भी उसमें नहीं रहता। काठकी पुतली निर्जीव है, भक्त चेतन है। परंतु उसकी सारी चेतना उस महाचेतनके चरणोंमें समर्पित होकर उसीकी बन जाती है। यह परम परतन्त्रता ही, यह अपनेको सर्वतोभावसे सदाके लिये श्रीभगवान्‌की लीला-सामग्री बना देना ही, परम लाभ है। यह भक्तका बड़ा ऊँचा स्वरूप है। यही यथार्थ प्रपत्ति या शरणागति है। यही वास्तविक आत्मनिवेदन है। इसमें वह भक्त अपना लोक-परलोक और भुक्ति-मुक्तिका सारा भार श्रीभगवान्‌के चरणोंपर डालकर निश्चिन्त हो जाता है। उसे इस बातकी भी स्मृति नहीं रहती कि उसका कोई भार भगवान्‌के चरणोंपर पड़ा है। वह लोक-परलोक और भोग-मोक्षको भूलकर सब प्रकारके स्वार्थको स्वाहा कर भगवान्‌की लीलाका उपकरण-मात्र बना रहता है।

× × × ×

महात्माओंमें सदा आदरबुद्धि रखनी चाहिये। महात्माओंका मन मक्खनसे भी अधिक कोमल होता है। मक्खन तो खुद ताप पाकर पिघलता है, परंतु महात्मागण तो अपने तापको तो ताप ही नहीं मानते। वे तो दूसरेके तापसे पिघल जाते हैं। इस प्रकारके परदुःखकातर हृदयके कारण ही वे तीर्थोंको तीर्थत्व प्रदान करनेके लिये जहाँ-तहाँ जाते हैं। जीवोंका कल्याण करना ही उनका स्वभाव है। ऐसे महात्माओंमें सदा समान बुद्धि रखनी चाहिये। उनकी चरण-धूलिसे अपने मस्तकको अभिषिक्तकर अपनेको पावन बनाना चाहिये। किसी भी महात्मामें दोष-बुद्धि, द्वेष-बुद्धि या अनादर-बुद्धि नहीं करनी चाहिये। याद रखना चाहिये—श्रीभगवान्‌का किसीने ठेका नहीं ले रक्खा है। सभी अपने-अपने भावके अनुसार भगवान्‌को भजते हैं और भगवान् भी 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इस घोषणाके अनुसार विभिन्न प्रकारसे उनकी अनुभूतिमें आते हैं।

× × × ×

अनन्य भगवत्-शरणागति अथवा यथार्थ परमात्म-ज्ञानके बिना कर्मके अवश्यम्भावी परिणामस्वरूप प्राप्त हुए सुख-दुःखमें चित्तपर असर हुए बिना रहता नहीं और उस अवस्थातक पहुँचनेपर उसे टालनेकी आवश्यकता नहीं रहती। जबतक अहंता, ममता, कामना और आसक्ति है, जबतक हम मृत्युशील संसारके स्तरमें खड़े हैं, तबतक अशान्तिका सङ्ग नहीं छूट सकता। अशान्तिके नये-नये कारण पद-पदपर प्रत्यक्ष होते रहते हैं।××××××आत्माकी अनश्वरता और देहका विनाशीपन प्रत्यक्ष है। गीताके दूसरे अध्यायके ग्यारहवें श्लोकसे तीसवें श्लोकतक श्रीभगवान्‌ने इसका विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। अविनाशी आत्माका इस विनाशी देहके साथ आरोपित सम्बन्ध है और इसी सम्बन्धके कारण हमें सुख-दुःख होता है। संसारमें न मालूम कितने प्राणी नित्य प्राणत्याग करते हैं, परंतु हमारा उनके साथ ममताका सम्बन्ध घनिष्ठ न होनेसे हमें उतना दुःख नहीं होता, जितना उनके सम्बन्धियोंको होता है और सम्बन्धियोंमें भी ममताकी न्यूनाधिकताके अनुसार दुःखकी अनुभूतिमें तारतम्य रहता है।

× × × ×

कोई साथ नहीं है तो क्या है; भगवान् सदा साथ हैं और प्रत्येक कार्यमें उनका मङ्गलमय हाथ है। भगवान् गाइड करेंगे—जैसा करना होगा, वैसी बुद्धि देंगे। भगवद्विश्वास न हिल जाय और किसीके अहितकी भावना हमारे मनमें न आ जाय। भगवान् सब मङ्गल ही करते हैं। पता नहीं, भगवत्कृपा कब किस रूपमें हमारे सामने प्रकट होती है। विपरीत लगनेवाली स्थितिमें ही तो हमारी परीक्षा होती है।

× × × ×

श्रीभगवान् मङ्गलमय हैं, उनकी देख-रेखमें ही सब कुछ होता है। भगवान्‌की कृपा ही सब कुछ कराती है। हमलोग जबतक भगवान्‌के सामने निर्दोष हैं, तबतक यहाँकी किसी भी घटनासे हमारी यथार्थमें कोई हानि कदापि नहीं हो सकती। जो होना होगा, हो ही जायगा। यदि हमारा दोष नहीं होगा तो हमपर क्यों कुछ होगा और यदि कुछ हो ही जाय तो वह किसी पूर्वकर्मके फलदानोन्मुख प्रारब्धके कारण होगा, वह होना ही चाहिये। उसमें हमारा मङ्गल ही होगा। हमें उसके लिये चिन्ता क्यों करनी चाहिये?

भगवान्‌के विधानके बिना कुछ होगा नहीं। विधानको बदलना किसीके लिये साध्य नहीं है और बदला भी क्यों जाय? वह मङ्गलमय भगवान्‌के मङ्गलमय हाथकी रचना है। हमारे मङ्गलके लिये ही है। हाँ, यदि हम सच्चाई और भगवद्विश्वासको छोड़कर अपने उद्देश्यसे गिरते हैं तो जरूर गलती करते हैं। आखिर सत्यका परिणाम विजयमें ही पर्यवसित होगा, चाहे वह हमारे इस जीवनमें सामने न आवे। अतः मेरा सभीसे यह अनुरोध है कि भगवान् और सत्यपर तथा भगवान्‌के मङ्गलमय विधानपर निश्चित विश्वास करके परिणामकी ओरसे तो निश्चिन्त हो जाइये। जो उन्होंने रचा है, वही होगा और वही मङ्गलमय होगा, चाहे देखनेमें भयानक ही हो। जरा-सी चिन्ता करके उनकी कृपापर अविश्वास मत कीजिये। परंतु विश्वासको रखिये भगवान्‌पर ही, किसी चाल या चालाकीपर नहीं।

× × × ×

यहाँका सम्बन्ध इस शरीरको लेकर ही है। पहले भी हमलोग कहीं थे, वहाँ भी घर-परिवार रहा होगा, उसकी अब याद भी नहीं आती, वैसे ही मरनेके बाद यहाँकी स्थिति होगी।

भैया! भगवान्‌के बिना संसार है ही अभावमय। यहाँ किसी भी स्थितिमें किसीको भी अभावके अभावका अनुभव नहीं होता। किसी-न-किसी अभावकी भावना मनमें खटकती ही रहती है और जबतक अभावका अनुभव है, तबतक प्रतिकूलता है और प्रतिकूलता रहते किसी भी हालतमें मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। भगवान्‌का कभी अभाव नहीं होता। जो भगवान्‌को सर्वदा अपने समीप समझता है, वही अभावसे मुक्त हो सकता है और अभावकी मुक्ति ही मुक्ति है।

× × × ×

भगवान्‌की कृपासे सब कुछ सफल होनेकी हमें आशा करनी चाहिये। श्रीभगवान्‌की प्रार्थनासे उनकी कृपाका अनुभव पद-पदपर और पल-पलमें हो सकता है। उनकी उस कृपाके ही बलसे भगवान्‌के नामका प्रभाव इतना फैले कि हम सबका भावी जीवन भगवान्‌के नाम-परायण हो जाय।××××भगवान् ऐसी कृपा रक्खें कि जिससे हम अपने जीवनमें कभी कोई ऐसा कार्य न कर बैठें, जिससे हम उनके कहाने-वालोंपर कलंकका जरा भी कण स्पर्श कर सके। उनकी कृपासे हमारा जीवन पवित्र हो, हमारे आचरण विशुद्ध हों और हमारा चरित्र सर्वथा सात्त्विक तथा उज्ज्वल हो एवं उन्हींकी प्रेरणासे हम उनके नाम, साधन और प्रचारमें यन्त्रवत् निमित्त बनें। हमें कभी अभिमान छू न जाय। भगवान्‌की कृपापर भरोसा रखना चाहिये और यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि उनकी कृपासे असम्भव भी सम्भव हो सकता है।

× × × ×

संसारकी कोई भी स्थिति भगवद्विश्वासी मनुष्यको न हर्षित कर सकती है, न उद्विग्न कर सकती है। सारी स्थितियाँ ही उसके लिये सुखद खेल होते हैं। वह न किसी स्थितिकी आकाङ्क्षा करता है, न किसी स्थितिसे द्वेष करता है। वह तो बस, सदा-सर्वदा अपने प्राणाराम प्रभुका होकर उनके इच्छानुसार रहनेमें ही आनन्दका अनुभव करता है तथा नित्य-निरन्तर कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे उनका मधुर-मधुर स्मरण करता रहता है। इस आदर्शको सामने रखकर हमको भी सदा प्रसन्न ही रहना चाहिये। अपनी किसी भी स्थितिपर मन मैला करना भगवान्‌के विधानपर मन मैला करना है। हमारा ऐसा व्यवहार कभी हमें सहन नहीं होना चाहिये।

× × × ×

काल तो बीत ही रहा है। कालके साथ ही मनुष्यकी आयु भी बीत रही है। संसारकी दुःखमयता तथा अनित्यता भी प्रत्यक्ष है। सभी दुःखपूर्ण तथा अनित्य हैं। इस अवस्थामें मनुष्यको संसारके मोहसे मुक्त होकर तुरंत भगवान्‌से अनन्य सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये। तभी वह दुःखसे मुक्त हो सकता है। पर मनुष्य भोग-सुखकी सैकड़ों आशाओंसे बँधा रहकर ऐसा नहीं कर पा रहा है। यही उसका प्रमाद है। इस प्रमादसे बचना बहुत ही आवश्यक है। सचमुच हम बड़ी भूल कर रहे हैं। दिन-रात दुःखका अनुभव करते हुए भी दुःखनाशके लिये उसी दुःखके बीजोंका संग्रह करते जा रहे हैं। इसको समझना चाहिये और समझकर संसारकी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। संसारमें वैसे ही रहना तथा

बरतना चाहिये जैसे नाटकका अभिनेता रंगमञ्चसे परे रहता है एवं रंगमञ्चके साथियोंके साथ बरतता है।

× × × ×

मनमें अशान्ति रहनेका कारण है--भगवान्‌में, उनके मङ्गलमय विधानमें पूर्ण विश्वासकी कमी। भगवान्‌पर पूर्ण विश्वास हो जानेपर चित्त सर्वथा शान्त और सुखमय हो जाता है। फिर किसी भी बाहरी परिस्थितिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भगवान्‌की इतनी महान् कृपा है कि जिसका कोई पार नहीं। हमारे चारों ओर सदा-सर्वदा कृपाका समुद्र लहरा रहा है। ऐसा अनुभव करना चाहिये कि हम उस कृपा-सुधा-समुद्रमें डूबे हुए हैं; ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें, आगे-पीछे सभी ओर कृपा-सुधाकी मधुर तरंगें लहरा रही हैं। हमारा चित्त कृपासिन्धुमें अवगाहन कर अत्यन्त शीतल, शान्त, मधुर तथा परम पवित्र हो रहा है। प्रतिकूलतामें भगवान्‌के मनकी हो रही है—इस भावनासे विशेष प्रसन्न रहा करें।

× × × ×

हमारे सबके मनोंकी बात प्रभु पूरी-पूरी जानते हैं और वे सर्वशक्तिमान् होते हुए ही हमारे परम सुहृद् भी हैं। अतएव वे वही करते हैं, जो हमारे लिये उचित आवश्यक तथा लाभदायक होता है। हमें उनकी कृपा तथा उनके विधानपर विश्वास करना चाहिये। प्रभु हमारे मनकी नहीं होने देते, इसका अर्थ ही है--वे अपने मनकी करते हैं और हमें उनके मनकी प्रसन्नतामें ही सदा प्रसन्न रहना चाहिये; क्योंकि उसीमें हमारा मङ्गल है।

× × × ×

तुम यह तो निश्चय समझो कि तुमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है और उन्होंने तुमको अपना लिया है। तुम्हें भगवान्‌की कृपापर विश्वास करके यह निश्चय कर लेना चाहिये तथा संतोष भी करना चाहिये कि भगवान् जब जैसा ठीक समझते हैं, वही करते हैं और वही करेंगे तथा उसीमें हमारा परम हित है। उन्होंने इतनी कृपा की है, वे कृपासिन्धु और भी कृपा करेंगे। मनमें निराश, उदास और चिन्ताग्रस्त कभी नहीं होना चाहिये।××××खूब-खूब प्रसन्न रहा करो। प्रभुकी तुमपर बड़ी कृपा है। वे नित्य तुम्हारे पास हैं।

× × × ×

प्रभु हम सबकी सुनते हैं, पूरी-पूरी सुनते हैं। पर वे करते हैं अपने मनकी। खास करके उनके लिये तो वे निःसंकोच होकर और भी अपने मनकी करते हैं, जिन्होंने अपने-आपको उनके समर्पण कर दिया है। वे तो उन्हींके हाथके खिलौने हो गये हैं—वे जो चाहें जैसे खेल खिलावें। 'प्रभुकी इच्छामें मेरा कोई वश नहीं है'--ऐसा न सोचकर प्रभुकी इच्छामें हमलोगोंको परम प्रसन्नताका अनुभव करना चाहिये।

सदा-सर्वदा प्रभुका मङ्गलमय चिन्तन करना चाहिये तथा कहीं भी, कभी भी प्रभुको अपनेसे दूर नहीं समझना चाहिये। वे सदा-सर्वदा हमारे साथ रहते हैं--सोते-जागते, खाते-पीते, सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक--सभीमें, सभी समय। अतएव उन्हें निरन्तर अपने अत्यन्त समीप समझकर परम प्रसन्न रहना चाहिये। प्रभुको हृदयमें लाते ही सारी मलिनता, सारा अन्धकार नष्ट हो जायगा, वैसे ही जैसे सूर्योदयके आभाससे ही अन्धकार मिट जाता है।

× × × ×

मृत्यु बूढ़ा-बालक नहीं देखती। हम सभीके शरीरोंकी एक दिन यही दशा होनी है। जैसा जिसका संसारमें रूप होगा, उसीके अनुसार कुछ दिन रो-गाकर संसार उसे भूल जाता है। अपने कर्म-संस्कार ही साथ जाते हैं। इसलिये मनुष्यको बड़ी सावधानीके साथ नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते रहकर भगवत्सेवाके भावसे ही यथायोग्य शुभ कर्मोंका आचरण करना चाहिये। मृत्युको देखकर संसारसे तथा भोगोंसे वैराग्य होना चाहिये।

× × × ×

हृदयमें भोगोंके बदले भगवान्‌का पवित्र निवास हो जाय। प्रभुकी स्मृति प्राणोंके साथ घुल-मिल जाय। इसलिये जीवनका एक क्षण भी पाप-चिन्तन और व्यर्थ-चिन्तनमें न खोकर सदा-सर्वदा प्रतिक्षण भगवत्स्मरणकी चेष्टा करनी चाहिये। जो वास्तवमें प्रभुपर निर्भर होता है, परम प्रेमास्पद, करुणासागर, अकारण कृपालु, सहज सुहृद् हमारे वे प्रभु उसके जीवनको निर्विघ्न बनाकर अपना लेते हैं, उसके हृदयको अपना नित्य निवास बना लेते हैं। उसको अपने हृदयमें लोभीके धनकी-ज्यों बसा लेते हैं।

× × × ×

प्रभुके लिये जो अपने मनको खाली कर देता है, उस मनमें प्रभु सदाके लिये आ विराजते हैं और उसपर अपना एकाधिकार कर लेते हैं। फिर निकाले भी नहीं निकलते। प्रेमी भक्तको निरन्तर केवल उनकी स्मृति ही नहीं होती, केवल संनिधिका ही अनुभव नहीं होता, निरन्तर लीला-दर्शन भी होता रहता है तथा लीलामें सहयोगका भी उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। वह लीलाका भी अनुभव करता है। इस प्रभुके नित्य मिलनको कभी कोई हटा नहीं सकता, बल्कि इसकी प्रगाढ़ता और स्पष्टता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। प्रेमराज्यमें प्रभु सदा साथ रहते हैं, यह सर्वथा निश्चित बात है। हमारी ही कमी है जो हम प्रभुसे अनन्य प्रेम करके उनके नित्य सङ्गका अनुभव नहीं करते।

× × × ×

भगवान्‌की सहज ही अनन्त कृपा है। उनकी कृपाके अनुभवसे बहुत आनन्द रहता है। हर अवस्थामें उनकी अहैतुकी प्रीति तथा अकारण कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। संसारकी सभी स्थितियोंमें सदा इस बातको लेकर परम प्रसन्न होना चाहिये कि 'श्रीभगवान् मेरे हैं। उन्होंने मुझको पूर्ण रूपसे अपना लिया है। अतएव सदाके लिये वे मुझे अपनाये ही रक्खेंगे; क्योंकि वे अपनाकर छोड़ना जानते ही नहीं। जीवन-मृत्यु सभीमें उनका सङ्ग रहेगा, सचमुच रहेगा ही।' भगवान्‌को हम ही भूलते हैं, वे तो कभी नहीं भूलते। छोड़ना तो जानते ही नहीं। हमारे मनमें विश्वासकी कमी होनेसे हम ऐसा अनुभव नहीं कर पाते।

× × × ×

नाम-जप, पाठ नियमितरूपसे करते रहना चाहिये। स्मृति अधिक-से-अधिक हो, अधिक-से-अधिक मधुर हो, अधिक-से-अधिक जगत्‌की चिन्ताको हरनेवाली हो, अधिक-से-अधिक संनिधिका अनुभव करानेवाली हो, अधिक-से-अधिक पवित्रतम भावोंका उदय करनेवाली हो और जगत्‌के शोक, भय, विषाद, मोह, ममता, अहंता—सबका सर्वथा नाश करनेवाली हो। ऐसी स्मृतिके लिये मनमें दृढ़ संकल्प करके भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

गंदा साहित्य और सिनेमा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य संदेश)

इधर शारीरिक और मानसिक पवित्रताका नाश करनेवाले गंदे साहित्य और मनोरञ्जनके नामपर चलनेवाले गंदे चलचित्रों—सिनेमासे हमारे चरित्रका बड़ी बुरी तरहसे नाश हो रहा है । चरित्र ही नहीं—समय, अर्थ, स्वास्थ्य तथा धर्मका भी इनके कारण बड़ी तेजीसे ह्रास हो रहा है । इनसे समाजभरमें आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक और सामाजिक पतन हो रहा है । बहुत-से लोग, जो घरकी स्त्रियोंको और बाल-बच्चोंको सिनेमा आदिमें साथ ले जाते हैं, वे बहुत भूल करते हैं । वे अभी इस परिणामको नहीं सोच रहे हैं कि सिनेमाके बीभत्स अश्लील चरित्र और चित्रोंको देखकर सबकी बुद्धि विचलित और भ्रष्ट हो जाती है । कभी-कभी तो ऐसे अश्लील दृश्य आते हैं कि उन्हें देखकर बच्चे माता-पिताके सम्मुख और माता-पिता बच्चोंके सम्मुख लज्जित हो जाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि माता-पिता और बालकोंके परस्पर न्यायोचित शील-संकोचका भी ह्रास हो जाता है । स्वास्थ्यपर भी बहुत बुरा असर पड़ता है । धन और मनुष्य-जन्मके अमूल्य समयका अपव्यय तो प्रत्यक्ष है ही ।

यदि कहा जाय कि धार्मिक सिनेमा देखनेमें तो लाभ ही है तो ऐसी बात नहीं है । प्रथम तो सिनेमामें शुरूसे लेकर आखिरतक प्रायः सभी लोगोंका उद्देश्य दर्शकोंके चित्तको आकर्षित करके धन कमाना है । इसलिये उसमें सच्ची धार्मिकता कभी नहीं आ सकती । दूसरे, अभिनेता-अभिनेत्री चाहे कैसे भी हों, उनके लिये यह नहीं कहा जा सकता कि वे लोग सब इन्द्रियविजयी हैं और धार्मिक भावनासे ही सिनेमामें आये हैं । जवान उम्र, रात-दिन शृङ्गारके वातावरणमें रहना, वैसे ही अभिनय करना, शौकीनी तथा बिलासके लिये स्वतन्त्रता, रूप-सौन्दर्यका विज्ञापन, धनकी अधिकता—ये सभी ऐसे कारण हैं, जो मनुष्यको कर्तव्य-भ्रष्ट करके प्रमादमें नियुक्त कर सकते हैं । जब साधकों और संतोंमें भी सङ्गदोषसे कर्त्तव्य-विमुखता तथा साधन-विमुखता आ जाती है, तब दिन-रात विलासके ऐसे वातावरणमें रहनेवाले नट-नटियोंसे शुद्ध धार्मिक भावनाकी प्राप्ति दर्शकोंको होगी, यह आशा करना सर्वथा व्यर्थ है ।

बड़े खेदकी बात तो यह है कि कोई-कोई माता-पिता तो धनके लोभसे अपने तरुण बालक-बालिकाओंको सिनेमाके नट-नटी बनानेमें भी सहमत हो जाते हैं; जो कि बहुत ही खतरनाक है । वे इस बातको भूल जाते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा । सच्ची बात तो यह है कि जो तरुण-तरुणियाँ सिनेमा-क्षेत्रमें अभिनय करते हैं और इसमें धनलाभ तथा मान-सम्मान प्राप्त करके गौरव मानते हैं, वे अपने-आपको विषय-भोगरूपी आगमें झोंककर स्वयं ही अपना नैतिक और धार्मिक पतन कर रहे हैं । जैसे सौन्दर्यके लोभी शलभ (फतिंगे) दीपककी शिखा देखकर सुख-भोगकी दृष्टिसे उसके समीप जाते हैं और तड़प-तड़पकर मरते तथा जलकर भस्म हो जाते हैं, वैसी ही दशा यहाँ होती है । वे कीड़े तो भविष्यके दुष्परिणामका ज्ञान न होनेसे सहज ही कालके कलेवा बन जाते हैं, परंतु जो मनुष्य होकर भी भविष्यके दुष्परिणामको बिना सोचे नाशवान् क्षणभङ्गुर सांसारिक सुख और भोगके लिये ऐसे कार्योंमें सम्मिलित होते हैं, उनके लिये क्या कहा जाय ? ईश्वरने हमें विवेक और बुद्धि दी है । मनुष्य होकर भी हम यदि उस विवेक-बुद्धिसे काम न लें तो यह हमारे लिये बहुत ही लज्जा, दुःख और परितापकी बात है !

रात-दिन जिस प्रकारके वातावरणमें मनुष्य रहता है और जैसा काम करता है, वैसा ही उसका मन बन जाता है। फिर उसके मनमें वही वातावरण छा जाता है और बार-बार वही दृश्य सामने आते रहते हैं। इस निश्चित सिद्धान्त तथा अनुभवके अनुसार गंदे सिनेमाके नट-नटियोंके तथा उनके दर्शकोंके मनमें भी वैसा ही जगत् बन जाता है और उनका सहज ही नैतिक, धार्मिक और सामाजिक पतन होता है। आजकल जो गली-गलीमें दीवालोंपर सिनेमाके शृङ्गारचित्र चिपके रहते हैं, दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिकपत्रोंमें सिनेमाओंके सचित्र विज्ञापन रहते हैं तथा बड़े-बड़े शहरोंमें तो बड़ी बारातकी तरह बड़े समारोह और गाजे-बाजेके साथ घूम-घूमकर सिनेमाओंका विज्ञापन किया जाता है, इन सबको देख-सुनकर स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाओंपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। उनके मनोंमें दबे हुए दुर्भाव जाग्रत् हो जाते हैं और नये-नये बुरे भाव और बुरे संस्कार उत्पन्न होते और अपना घर कर लेते हैं, जिससे उनका जीवन नष्ट हो जाता है। इस प्रकारकी हानिकारक मनोरञ्जनकी वृत्तिको, जो भविष्यमें विनाश करनेवाली है, तुरंत रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिये। नहीं तो, इनके बुरे संस्कार जमकर बहुत बुरा परिणाम होना सम्भव है। कला और मनोरञ्जनके नामपर लोगोंका इस प्रकारका पतन न तो वस्तुतः किसी सरकारको इष्ट होना चाहिये, न सिनेमा आदिमें अभिनय करनेवालोंके हितैषी माता-पिता (अभिभावक) आदिको ही और न दर्शकोंको ही; पर इस समय तो सभी ओर मानो मोह-सा छाया है। देशका दुर्भाग्य है!

अभिनय करनेवाली लड़कियोंके अङ्गसंचालन और कामोत्तेजक दृश्योंसे युक्त चित्र और चरित्रोंको देखकर हजारों मनुष्य उनपर पापदृष्टि करते हैं। इस बातको समझकर उनके माता-पिताओंको लज्जा आनी चाहिये और अपमानका बोध होना चाहिये। यह प्रवृत्ति यों ही बढ़ती गयी तो पता नहीं आगे चलकर समाजकी क्या दशा होगी। व्यसनमें फँसे हुए लोगोंकी दुर्दशाकी भाँति गंदे सिनेमाके शौकीनोंका नैतिक, धार्मिक और सामाजिक पतन ही सम्भव है।

आजकल सिनेमाकी प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गयी है कि बहुत-से नर-नारी घर-द्वार फूँककर, धर्म-कर्म खोकर, माता-पितासे लड़-झगड़कर और शील-संकोच, लज्जा-मर्यादाका नाश करके भी सिनेमा देखते हैं। मजदूर लोग भी मनोरञ्जनके नामपर कठिन मजदूरीके पैसे सिनेमामें बरबाद करके अपना पतन करते हैं और बहुत-से बालक चोरी करके सिनेमा देखते हैं। मनोरञ्जनके नामपर समाजमें चौतरफा फैला हुआ यह रोग बड़ा ही भयानक है।

अंग्रेजी सिनेमाओंमें तो पात्रोंके अङ्गसंचालनके साथ नग्न स्वरूप भी दिखाये जाने लगे हैं। इनको देखकर कौन ऐसा संयमी पुरुष है, जिसके मनमें विकार उत्पन्न होकर पतन न हो। क्या यह वाञ्छनीय है कि मनोरञ्जनके नामपर सिनेमाके इस पापको यों ही उत्तरोत्तर बढ़ने दिया जाय और हमारा तरुण-समाज उसका बुरी तरह शिकार होकर अपने जीवनसे हाथ धो बैठे और हमारे राष्ट्रका भविष्य अन्धकारमय हो जाय?

अतः सरकारसे हमारी प्रार्थना है कि इन बातोंपर सरकारको ध्यान देना चाहिये और सेंसर-बोर्डको बड़ी कड़ाईके साथ काम लेकर इस बुराईकी बाढ़को मजबूत बाँध बाँधकर तुरंत रोक देना चाहिये; जिससे जनता सामाजिक, नैतिक और आर्थिक हानिसे बच सके।*

---

* बुराईको रोकनेकी बात तो दूर रही, अब तो श्रीखोसला महोदयकी अध्यक्षतामें नियुक्त फिल्म-सेंसर-शिप जाँच-समितिने खुले तौरपर कामोत्तेजक चुम्बन और नग्न अङ्गोंको दिखानेकी अनुमति दे दी है। चोरी, डकैती, खून, नये-नये

आजकल हमारे कुछ लेखक भी ऐसे साहित्यका निर्माण कर रहे हैं, जिसको पढ़नेपर पढ़नेवालेके मनमें विकार उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसे विकारोंसे बल, बुद्धि, स्मृति, ज्ञान, तेज और आयुका विनाश होना और नाना प्रकारके रोगोंका शिकार हो जाना अनिवार्य हो जाता है।

सिनेमाका असर हमलोगोंके वर्तमान जीवनपर बहुत ही बुरा पड़ रहा है। लोग अपने कपड़े और पोशाकपर भी सिनेमाके चित्र बनाने लगे हैं तथा जिन कपड़ोंको पहननेमें भले घरकी महिलाएँ लज्जा करती हैं, उन्हीं कपड़ोंको हमारी युवती बालिकाएँ पहनने लगी हैं। यह कितना भारी पतन है।

इतना ही नहीं, हमारे समाजमें इस समय नास्तिकताका भी जोरोंसे प्रचार किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप कुछ लोग धर्म, कर्म, ईश्वर, ज्ञान, वैराग्य, हिंदू-संस्कृति, सदाचार और सद्गुणोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं तथा बिना सोचे-समझे ही प्राचीन कालसे चली आयी हुई आदर्श मर्यादाको आडम्बर कहने लगे हैं। यही स्थिति बनी रही तो भविष्यमें उच्छृङ्खलता तथा धर्म-विरोधी वातावरण और अराजकता उत्तरोत्तर बढ़ सकती है। अतः हमें सचेत होकर इस बढ़ती हुई गतिको रोकना चाहिये। इस प्रकारकी हानि देखकर भी यदि हमारी आँखें नहीं खुलेंगी तो फिर कब और कैसे खुलेंगी?

जब मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह भलेको बुरा और बुरेको भला देखने लगता है, तब उसका सुधार होना कठिन हो जाता है; क्योंकि जो मनुष्य बुराईको बुराई मानता है, उसका तो सुधार हो सकता है; किंतु जो बुराईको भलाई मान बैठता है, उसका सुधार कठिन है। अतः लोक और परलोकमें कल्याण चाहनेवाले भाई-बहिनोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि उन्हें न तो स्वयं ऐसे नाटक-सिनेमा देखने चाहिये और न अपने बालक-बालिकाओंको ही दिखाने चाहिये। इनकी बुराइयोंको समझकर स्वयं इनका त्याग करेंगे, तभी अपने बालक-बालिकाओंको रोक सकेंगे। बालक अनुकरणप्रिय तो होते ही हैं, पर बुरी बातोंका असर उनपर जल्दी होता है, उतना अच्छी बातोंका नहीं होता। जितनी बुराइयाँ हैं, आरम्भमें क्षणिक सुखकारक होनेसे अमृतके तुल्य दीखती हैं, पर उनका परिणाम विषके तुल्य है और जो भलाइयाँ हैं, वे साधनकालमें कठिन होनेसे विषके तुल्य दीखती हैं, पर परिणाममें वे अमृतके तुल्य हैं। इसलिये जो वर्तमानमें सुखदायी प्रतीत होती है, उसीको लोग अज्ञानसे ग्रहण करते हैं। जैसे रोगी कुपथ्यका परिणाम न देखकर कुपथ्य कर लेता है, उसी तरह विषयासक्त पुरुष भी परिणामको नहीं देखते और विनाशकारी प्रवृत्तियोंमें पड़कर अपने जीवनको पतनके गर्तमें डाल देते हैं, किंतु जब परिणाममें दुःख पाते हैं, तब घोर पश्चात्ताप करते हैं। पर फिर उस पश्चात्तापसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होता।

अतएव समस्त नर-नारियोंसे पुनः सविनय प्रार्थना है कि ऐसे सिनेमा आदिको न तो देखना चाहिये और न किसीको दिखाना चाहिये तथा न इसके लिये अभिरुचि ही पैदा करनी चाहिये।

(संग्राहक और प्रेषक—श्रीशालिगरामजी)

ढंगके अपराध तो सिनेमासे बढ़ ही रहे थे, अब खुले नग्न अङ्गोंके प्रदर्शन तथा चुम्बन आदिके दृश्योंमें भले घरोंके नर-नारियोंका घोर चारित्रिक पतन हो जायगा। विदेशोंमें तो लोग अपनी अनुचित क्रियाओंसे ऊबकर संयम तथा आध्यात्मिकताकी ओर आ रहे हैं। अमेरिका और इंगलैंडमें हरिकीर्तन होते हैं, श्रीराधाकृष्णके मन्दिरोंका निर्माण हो रहा है। नवयुवक तथा नवयुवतियाँ मांस, मद्य, अंडे, चाय, सिगरेट, सिनेमा आदिका त्याग कर संयमपूर्ण जीवन बिताने तथा भजन करनेमें लग रहे हैं और यहाँ हमारी विवेकबुद्धि उचित-अनुचितका विचार छोड़कर हमें घोर पतनकी ओर ले जा रही है! पता नहीं, कैसा दुर्भाग्य है! सबको चाहिये कि इस नग्न प्रदर्शनका घोर विरोध करें।

चन्द्रलोक-यात्रा और भारतीय शास्त्र

(लेखक—पूज्यपाद स्वामीजी अनन्तश्री करपात्रीजी महाराज)

'अग्नीषोमात्मकं जगत्'के अनुसार संसार अग्नि और सोमरूप है। अग्नि ही सूर्यरूपमें व्याप्त होता है और सोम चन्द्रमाके रूपमें। सृष्टिमें दोनोंकी अनिवार्य आवश्यकता है। आध्यात्मिक भाषामें शिव-शक्ति या प्रकृति-पुरुष सम्पूर्ण विश्वके हेतु हैं। विद्युत्-प्रकाशमें भी ठंडा-गरम दो तारका योग अपेक्षित होता है। इसी कोटिमें अग्नि और सोमका प्रत्येक सृष्टिकार्यमें उपयोग होता है। प्रश्नोपनिषद्में कहा गया है कि 'प्रजाकामनासे प्रजापतिने तप करके मिथुन (जोड़ा) उत्पन्न किया। वह था रयि और प्राण। (१४) प्राणका स्थूल रूप आदित्य और रयिका चन्द्रमा है। प्रत्यक्ष ही सूर्य और चन्द्रमाका सम्बन्ध सृष्टिसे है। अन्न-फलादि वस्तुओंके परिपाक तथा मनुष्यके स्वास्थ्यपर भी चन्द्र-सूर्यका प्रभाव पड़ता है। जैसे सूर्यमण्डलसे पृथक् भी सूर्यका प्रभाव रहता है, वैसे ही चन्द्रमण्डलसे पृथक् भी चन्द्रका प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य-पौरस्त्य दोनों ज्योतिषके अनुसार ग्रहोंकी विभिन्न स्थितियोंका प्रभाव हमारे लोकपर भी पड़ता है। अग्नि और सोमरूपसे सभी विश्वमें वे व्याप्त ही हैं। जैसे ईंधनके बिना अग्निका प्रज्वलन नहीं होता, घीके बिना दीपकका प्रज्वलन नहीं होता, उसी तरह सोमके अखण्ड धारापातके बिना सूर्यका भी प्रज्वलन नहीं हो सकता है। इसीलिये श्रीभागवतमें सोम या चन्द्रको सूर्यमण्डलके ऊपर बतलाया गया है; क्योंकि सोमका महान् अर्णव सर्वव्यापी है, परंतु उसका विशुद्ध रूप सूर्य-मण्डलसे ऊपर है। फिर भी, जिसकी पूर्णतामें पूर्णमासी होती है, वह दृश्य चन्द्रमा उसी महान् सोमार्णवका स्थूल रूप है। उपनिषदोंमें रयिका या सोमका ही रूपान्तर अन्न भी माना गया है।

'पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।'

(गीता)

भगवान् कहते हैं कि 'मैं रसात्मक सोमरूपसे सब अन्नादि ओषधियोंका पोषण करता हूँ।'

छान्दोग्यके अनुसार मनका अन्नमय होना बताया है। तभी अन्नके द्वारा उसका आप्यायन होता है। शुद्ध-अशुद्ध अन्नोंका मनपर शीघ्र ही असर पड़ता है। मनपर भंगपान या सुरापानका परिणाम तो सभीको विदित ही है। वेदोंमें सोम या चन्द्रको परमेश्वरके मनसे उत्पन्न हुआ कहा गया है। सभी जीवोंके सभी मनोंका वह वैसे अधिष्ठातृ देवता है, जैसे सूर्य प्राणियोंके चक्षुका अधिष्ठातृ देवता है।

कुछ लोग शास्त्रविरुद्ध होनेसे चन्द्रलोकपर मानवका इसी देहसे जाना असम्भव कहते हैं। अवश्य कहीं-कहीं प्रत्यक्ष भी शास्त्रविरुद्ध होनेसे अमान्य होता है। जैसे चन्द्रमाका स्थाली-जैसा प्रतीत होना प्रत्यक्ष है, फिर भी वह शास्त्रविरुद्ध होनेसे अमान्य है। परंतु अपरोक्षित प्रत्यक्ष ही शास्त्रविरुद्ध अमान्य होता है। 'आदित्यो यूपः'के अनुसार आदित्य और यूपकी एकता शास्त्रसे प्रतीत होती है; परंतु वह प्रत्यक्ष होनेसे गौणार्थक माना जाता है। कृष्णल (स्वर्णखण्ड)का श्रपण (पाक) विहित है, परंतु रूप, रस विपरिवृत्तिरूप पाक सम्भव न होनेसे वहाँ उष्ण करना ही अर्थ माना जाता है। अतः परोक्षित प्रत्यक्षका शास्त्रसे बाध नहीं होता। जैसे प्रत्यक्ष दृष्ट व्यभिचारका अपलाप करती हुई किसी स्त्रीने कहा कि 'मेरा पति मुझ पतिव्रताके वचनोंपर विश्वास नहीं करता, अपनी आँखके दो बुलबुलोंपर विश्वास करता है।' वैसे ही वचनके बलपर परोक्षित प्रत्यक्षका अपलाप करना सम्भव नहीं। हर एक प्रमाण अपने विषयमें ही शूर होते हैं। अतः प्रत्यक्षके विषयमें आगम अकिंचित्कर होता है। वैसे ही धर्म ब्रह्मादि आगमके विषय-में प्रत्यक्ष दुर्बल या बाधित है। तत्त्वमस्यादि आगमके सामने जीव-ब्रह्मके भेदविषयक प्रत्यक्षादि भी बाधित होते हैं; क्योंकि वहाँ उपक्रमादि लिङ्गोंसे अभेदमें ही आगम पर्यवसित है। 'आदित्यो यूपः' आदि अर्थवाद हैं। उनका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं है। अतः वे प्रत्यक्षसे बाधित होते हैं।

स्थूल चन्द्र

इसके सिवा इस विषयमें शास्त्रका विरोध है भी नहीं। शास्त्र स्वयं स्थूल चन्द्रको दृश्य ही मानते हैं। प्राचीन कालमें भी रावणने चन्द्रलोकमें जाकर चन्द्रमापर बाणोंका प्रयोग किया था। ब्रह्माकी आज्ञासे लौट आया था। सप्तशतीका पाठ करनेवाला हर एक व्यक्ति पढ़ता है कि

'महिषासुरने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु और चन्द्रका अधिकार स्वयं ले लिया था—

सूर्यचन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति॥

हाँ, शास्त्रोंके अनुसार अग्निहोत्रादि कर्मकलापके अनुष्ठाता धार्मिक लोगोंद्वारा प्राप्य चन्द्रलोक एक दिव्यधाम या स्वर्ग माना जाता है। वहाँ विविध प्रकारका सुख-वैभव माना जाता है। वह सत्कर्मके प्रभावसे ही प्राप्त होता है। उसे सर्वसाधारण-गम्य नहीं माना जाता।

इधर वर्तमान वैज्ञानिक चन्द्रलोक पहुँच गये। वहाँसे मिट्टी, पत्थर भी लाये हैं। यह विरोध अवश्य ही प्रतीत होता है। परंतु विचार करनेसे यह भी विरोध नहीं है। कारण, वह दिव्य भोग या वैभव सूक्ष्म है, स्थूल नहीं; अतः उसकी प्राप्तिके लिये धर्म-कर्मानुष्ठान ही मार्ग है। जैसे जो पदार्थ सूक्ष्म वीक्षणोंसे दिखायी देता है, वह मात्र नेत्रोंसे नहीं दृष्ट होता। वैसे ही धर्मानुष्ठानसाध्य सूक्ष्म दिव्य पदार्थका दर्शन सूक्ष्म वीक्षणोंसे भी दृष्ट नहीं होता है। जैसे भूलोकमें भी काशी, वृन्दावनका दिव्यरूप सर्वसाधारणके लिये अगोचर है, वैसे ही चन्द्रलोककी सूक्ष्म विशेषता भी बाह्य चक्षु आदिसे अगम्य है।

कैलास पर्वतपर जब बिना उपासनाके रावण गया था तो उसको केवल बर्फ और पाषाण ही दृष्टिगोचर हुए थे। उपासनाके पश्चात् जानेपर उसे रत्नमय पाषाण और कल्पवृक्षोंका वन दृष्टिगोचर हुआ था। हरिदास स्वामीकी कृपासे अकबरको वृन्दावनका केशीघाट रत्नोंसे निर्मित दिखायी पड़ा था। इस तरह महान् सोमार्णवके स्थूलरूप दृष्ट चन्द्रमण्डलमें भी बहुत-सी दिव्यताओंके होनेपर भी वैज्ञानिकोंको उनका अनुभव नहीं हो सकता। उन्हें वहाँ मिट्टी एवं ज्वालामुखीका ही अनुभव हुआ है। यही स्थिति अन्य लोकोंके सम्बन्धमें है। कई लोक इतने उष्ण या शीत हैं या वायुहीन हैं कि वहाँ जीवन-तत्त्वका होना असम्भव समझा जाता है। परंतु जीवनका तत्त्व तो अभी वैज्ञानिकोंके लिये अगम्य ही है। शास्त्रोंके अनुसार तत्तल्लोकोंके अनुरूप ही वहाँके जीवन एवं शरीर भी होते हैं। इसीलिये जैसे पृथ्वीपर पार्थिव शरीर होता है, वैसे ही आदित्यमण्डलमें तैजस शरीर होते हैं। उनके लिये सूर्यका तेज असह्य नहीं है। इसके अतिरिक्त शास्त्रोंकी दृष्टिसे और युक्तिसे यह सिद्ध होता है कि परोक्ष या अपरोक्ष ज्ञानोंका सुख-दुःखसे क्या सम्बन्ध होता है। सुख-दुःखका सम्बन्ध पुण्य-पापसे होता है। इस दृष्टिसे प्राणियोंके पुण्य-पापके अनुसार ही जैसे सुख-दुःख होते हैं, वैसे तदनुरूप ही ज्ञान भी होते हैं; क्योंकि अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थोंका प्रत्यक्ष अनुभव ही सुख-दुःखका मूल है। इसलिये किसीके लिये घृत-दुग्धका स्वप्नमें भी दर्शन नहीं होता, किसीको घृत-दुग्धकी नदियाँ दिखती हैं। इसीलिये तो हमारे लोकके ही घृत-दुग्ध समुद्रोंका उपलम्भ नहीं है। जैसे प्रेत, पिशाच या दिव्य सिद्ध या देवता सामने रहनेपर भी नहीं परिलक्षित होते हैं, वैसे ही भूलोक-चन्द्रके दिव्य देवता या सिद्ध सामने होनेपर भी सर्वसाधारणको दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

दिव्य गङ्गा

इस लोकमें जैसे जलमयी गङ्गासे भिन्न एक दिव्य देवी गङ्गा भी है, वैसे स्थूल पृथ्वीसे भिन्न परमाणुरूप नित्य पृथ्वी सूक्ष्म है। वह सर्वसाधारणके लिये अगम्य है। वैसे ही दैवीरूपा पृथ्वी देवता भी है। वह दिव्य स्थूल साधनोंसे दृष्ट नहीं होती। इसी तरह स्थूल चन्द्रमण्डलसे भिन्न व्यापक सोममण्डल या चन्द्रमण्डल पृथक् है। वह व्यापक है। विशुद्धरूपमें वह सूर्यमण्डलके ऊपर करोड़ों मील दूर है, वह अमूलमय है। स्वर्गीय लोगोंका सम्बन्ध उससे है। साथ ही सूर्य-चन्द्रके अभिमानी दिव्य देवता भी पृथक् हैं। वे सूक्ष्म दिव्य हैं। उपासना एवं पुण्यसे ही दृष्ट होते हैं, अन्यथा नहीं। अर्जुनके सामने भगवान् थे। फिर भी वे भगवान्के दिव्यरूपको देख नहीं सकते थे। जब भगवान्ने दिव्य दृष्टि दी, तभी उन्होंने भगवान्के दिव्य रूपको देखा—'दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्' 'मैं दिव्य चक्षु देता हूँ, उससे मेरे रूपको देखो।'

जलका एक रूप सूर्यकी किरणोंमें रहता है। वह बहुत सूक्ष्म होता है। दूसरा बादलोंमें रहता है। वह कुछ स्थूल है। शीतकालमें शुष्क प्रदेशमें फैले हुए जलके ही व्यापक सूक्ष्मकण शैत्यके हेतु होते हैं। उसी तरह रात्रिमें भी ग्रीष्मकालमें तेजके परमाणु ही उष्माके हेतु होते हैं। बादलोंमें रहनेवाले जलकी अपेक्षा नदी-समुद्रादिके जल स्थूल हैं। बर्फ बननेपर उसमें स्थूलता आती है। बर्फ हजारों वर्षका हो जानेपर नीलमणि बन जाता है। तब यह विश्वास करना और भी कठिन हो जाता है कि यह भी

सूर्यकी रश्मियोंमें रहा होगा । इस दृष्टिसे चन्द्रलोकके मिट्टी-पत्थर ही नहीं, भूलोकके भी मिट्टी-पत्थर कभी जल ही थे । वेदान्तानुसार 'अद्भ्यः पृथ्वी' जलसे ही पृथ्वी बनती है । चन्द्रोदय होनेपर समुद्रमें उत्ताल तरङ्गें व्यक्त होती हैं । अतः समुद्रसे भी चन्द्रमण्डलका विशेष सम्बन्ध जोड़ा जाता है । किन्हीं पुराणोंके अनुसार चन्द्रमा भी क्षीर-समुद्र-मन्थनसे ही इतर रत्नोंके समान प्रकट हुआ था । कुछ भी हो, वैज्ञानिकोंकी चन्द्रलोक-यात्रासे और धर्मोंके सामने कठिनाइयाँ अवश्य आ गयी हैं; किंतु वैदिक धर्मपर इससे कुछ भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ सकता है; क्योंकि अनेक बार लोक-लोकान्तरोंमें मनुष्योंका गमन भारतीय शास्त्रोंमें मान्य है । रघुवंशके अनुसार वसिष्ठके मान्त्रिक विधानोंके बलपर राजा रघुका रथ समुद्र, पर्वत तथा आकाशमें समानरूपमें जा सकता था । कर्दम-निर्मित पुष्पक-यानकी सर्वत्र अव्याहत गति थी । अर्जुन आदिका भी इन्द्र-लोकका गमनागमन था ही । हाँ, इन लोगोंको वहाँकी दिव्यताका भी अनुभव होता था, परंतु अभी वैज्ञानिकोंको उन लोकोंकी दिव्यताका अनुभव नहीं हुआ; क्योंकि उसके लिये विशेष सदाचार एवं पवित्रता भी अपेक्षित है ।

कमलाकर भट्टके अनुसार भी चन्द्रमण्डलके अतिरिक्त देवताविशेष चन्द्रादि मान्य हैं—

जपपूजनहेतोस्ते निर्मिता देवतांशकाः ।
विधिना बिम्बरूपा ये तद्भिन्नास्त्वव्ययाः सदा ॥

(सि० त० वि०)

अर्थात् जप-पूजादिके लिये विधाताने बिम्बरूप ग्रहोंसे भिन्न उनके अधिष्ठातृ देवताओंको निर्मित किया है । वे सदा ही महाप्रलयपर्यन्त अवश्य रहते हैं ।

चन्द्रलोक और चन्द्रदेव

(लेखक—स्वामीजी श्रीसनातनदेवजी महाराज)

अमेरिकाके तीन उड़ाकू वीर चन्द्रलोककी यात्रा कर आये । इसका सारे संसारमें बड़े हर्ष और कुतूहलसे स्वागत हुआ । इसमें संदेह नहीं कि यह भौतिक विज्ञान-की बहुत बड़ी उपलब्धि है । इसके लिये उन उड़ाकू वीरों और अमेरिकाके विज्ञान-विशारदोंकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है । परंतु इसकी प्रतिक्रिया कुछ आर्यधर्मावलम्बी भोले भाइयोंपर बड़ी विपरीत हुई है । शास्त्रोंमें तो चन्द्रमा-को एक देवविशेष बताया गया है । वे तारापति और ओषधीश हैं । उनका लोक भी अत्यन्त मनोरम होना चाहिये था और वहाँके निवासी देवगण तथा अप्सराएँ होनी चाहिये थीं । परंतु इन लोगोंको तो वहाँ पत्थर और धूलिके सिवा कुछ भी नहीं मिला । इस प्रत्यक्ष प्रमाणका अपलाप भी कैसे करें । इसलिये कई भाइयोंको देवतावादमें अनास्था हो गयी है और कईने नवग्रह-पूजनमेंसे चन्द्रमाका बहिष्कार कर देनेका निर्णय कर लिया है । अतः यहाँ विचार यह करना है कि इन दोनों बातोंका समन्वय कैसे हो !

इसमें संदेह नहीं कि हमारे सामने जो भी वस्तु होती है, वह अपने स्वरूपसे तो एक और एक-जैसी ही होती है । परंतु हमारी दृष्टियोंके भेदसे हम सबको उसकी उपलब्धि एक-जैसी नहीं होती । मनुष्यको रात्रिमें अन्धकारका अनुभव होता है, किंतु उल्लू या चमगादरको वही प्रकाश जान पड़ता है । मनुष्य जलके भीतर सदा नहीं रह सकता, किंतु जलजन्तुओंके लिये उसे छोड़कर रहना असम्भव है । मनुष्यको हाथी जैसा दिखायी देता है, चींटीको वैसा नहीं दीखता । इसी प्रकार विभिन्न जीवोंके नेत्रोंकी बनावटके अनुसार एक ही वस्तु अनेक रूपोंमें प्रतीत होती है । यह तो हुई केवल नेत्रेन्द्रियकी बात । इसमें भी संदेह नहीं कि अनन्त जीवोंके नेत्र भी अनन्त प्रकारके हैं । अतः केवल नेत्रोंके द्वारा भी एक वस्तुके विषयमें अनन्त जीवोंके ज्ञान अनन्त प्रकारके होने चाहिये । इसी प्रकार कर्ण, त्वचा, रसना और घ्राणेन्द्रियोंके द्वारा भी विभिन्न जीवोंके ज्ञान विभिन्न प्रकारके होंगे । अतः इस वैचित्र्यमय संसारमें विचित्र-विचित्र जीवोंकी उपलब्धियोंमें कितनी विचित्रता है—इसका निर्णय कोई कैसे कर सकता है ?

परंतु मनुष्यको ज्ञानके साधनरूपसे केवल इन्द्रियाँ ही प्राप्त नहीं हैं, उसे हृदय और बुद्धि भी मिली हैं । हृदयका

धर्म है भाव और बुद्धिका धर्म है विचार। इस प्रकार मनुष्यको इन्द्रियदृष्टि, भावदृष्टि और विचारदृष्टि—ये तीन दृष्टियाँ प्राप्त हैं। इनकी उपलब्धियोंमें भी बड़ा भारी अन्तर होता है। हमारे सामने एक स्त्री-शरीर है। यदि विशुद्ध इन्द्रियदृष्टिसे देखें तो वह हड्डी, मांस, रुधिर और त्वचा आदिका पिण्ड है। भावदृष्टिसे हम उसे माता, बहिन या पुत्री कहते हैं और विचारदृष्टिसे वह अपनी ही दृष्टिका चमत्कार है। इन तीनों दृष्टियोंसे उस एक पिण्डमें हमारे मनकी तीन दशाएँ होती हैं—इन्द्रियदृष्टिसे वह घृणाके योग्य जान पड़ता है, भावदृष्टिसे वह पूजा या स्नेहका पात्र है और बुद्धिदृष्टिसे उसमें उदासीनभाव होता है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक व्यक्तिके विषयमें इन तीन दृष्टियोंके कारण हमारे चित्तकी विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। कहना न होगा कि यहाँ हम बहुत मोटे रूपमें इन दृष्टियोंका विचार कर रहे हैं। इनके सूक्ष्म विवेचनमें जानेकी इस समय आवश्यकता नहीं है।

इन्हीं तीन दृष्टियोंके कारण तीन वादोंकी उद्भावना हुई है—इन्द्रियदृष्टिसे अधिभूतवाद, भावदृष्टिसे अधिदेववाद और विचारदृष्टिसे अध्यात्मवाद। हम किसी भी वस्तु या व्यक्तिको लें, उसका एक बाह्य रूप होता है, जो इन्द्रियोंका विषय है—इससे अधिभूतवादकी कल्पना हुई है। उसमें कुछ-न-कुछ शक्ति या योग्यता रहती है, यह भावका विषय है—इससे अधिदेववादका जन्म हुआ है तथा उसका जो तात्त्विक रूप है, वह विचारका विषय होता है—उससे अध्यात्मवादका आविर्भाव हुआ है। अधिभूतवाद हमें क्रियामें प्रवृत्त करता है, अधिदेववाद उपासनामें लगाता है और अध्यात्मवाद तत्त्वज्ञानकी ओर ले जाता है। ये तीनों दृष्टियाँ प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त हैं। परंतु अपने संस्कार, सहवास और शिक्षाके भेदसे किन्हींमें अधिभूतकी, किन्हींमें अधिदेवकी और किन्हींमें अध्यात्मवादकी प्रधानता होती है। साथ ही जिनके संस्कार, सहवास और शिक्षा सुसंस्कृत होते हैं, उनमें इन वादोंका शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है और जिनमें इनकी मलिनता होती है, उनमें इनका विकृत रूप रहता है। सृष्टिके सभी पदार्थ और व्यक्तियोंका निर्णय इन तीनों वादोंके द्वारा ही होता है। ऐसा एक भी मनुष्य नहीं हो सकता, जो इनमेंसे एकको भी सर्वथा त्याग सके। हाँ, विभिन्न व्यक्तियोंमें इनमेंसे किसी एककी प्रधानता और शेष दोकी गौणता तो रहती ही है।

इन्हीं तीन वादोंकी दृष्टिसे हम चन्द्रलोकके विषयमें भी विचार करें तो हमें उसके विषयमें प्राचीन आर्य और अर्वाचीन वैज्ञानिकोंकी उपलब्धियोंमें कोई विरोध नहीं जान पड़ेगा। अमेरिकनोंने इन्द्रियदृष्टिसे जिस चन्द्रलोकको पत्थर और धूलिके पिण्डरूपसे देखा है, हमारे प्राचीन आर्यमनीषियोंने उपासनापूत भावदृष्टिसे उसीको देवविशेषके रूपमें देखा था। आज भी उपासनाके द्वारा वह वैसा ही देखा जायगा। देवताओंका दर्शन इन्द्रियदृष्टिसे किसीको कभी नहीं होता, उन्हें उपासनाद्वारा भाव या दिव्यदृष्टि प्राप्त होनेपर ही देखा जा सकता है। इन्द्रियदृष्टिसे गङ्गाजी एक जलप्रवाह ही जान पड़ती हैं। उनसे सिंचाई या स्नानादिके ही कार्य हो सकते हैं। परंतु भावदृष्टिसे वे पतितपावनी मकरवाहिनी देवी हैं। वे मनुष्यको पापमुक्त करके मोक्ष प्रदान कर सकती हैं। भगवान् शंकर काशी या कैलासमें रहते हैं; परंतु यह बात भावदृष्टिवाले ही तो कह सकते हैं। क्या नेत्रोंसे किसीने उन्हें वहाँ देखा है? तथा कैलास और काशीका वह मनोरम रूप जो शास्त्रोंमें वर्णित है, नेत्रोंसे कहाँ दिखायी देता है? उसे भी उपासक लोग भावदृष्टिसे ही तो देख सकते हैं। अतः अमेरिकन उड़ाकुओंने भले ही चन्द्रलोकको एक उजाड़ भूखण्डके रूपमें देखा हो, उपासकोंकी दृष्टिमें तो वह अत्यन्त सुरम्य दिव्य लोक ही है और उसके अधिष्ठाता चन्द्रदेव एक देवविशेष ही हैं। देवताओंमें यह शक्ति होती है कि वे जिसे चाहें उसे ही मूर्त्तरूपोंमें दर्शन दें। उनके लोक, वस्त्र, आभरण, आयुध और वाहन सभी दिव्य होते हैं। उन्हें केवल उपासनाका परिपाक होनेपर ही प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये यदि चन्द्रमामें कोई जीव-जन्तु या नगर-ग्राम आदि दिखायी नहीं दिये तो आश्चर्य नहीं। वहाँ स्थूल सृष्टि न होनेपर भी दिव्य सृष्टि हो सकती है और उसका प्रत्यक्ष दर्शन केवल उपासना और तपस्यासे ही होना सम्भव है। जहाँ जगत् है, वहाँ जीव अवश्य होने चाहिये, भले ही वे हमारे चर्मचक्षुओंसे न दीखें। संसारमें ही ऐसे असंख्य जीव हैं जो इन नेत्रोंसे नहीं दीखते; किंतु सूक्ष्मवीक्षण-यन्त्रकी सहायतासे दीख जाते हैं! तब ऐसे जीव क्यों नहीं हो सकते जो सूक्ष्मवीक्षण-यन्त्रसे भी न दीखें। स्थूलकी सत्ता सूक्ष्मके बिना नहीं होती। जैसे परमाणुओंके बिना पृथ्वी और पञ्चतन्मात्राओंके बिना परमाणु नहीं हो सकते। इसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म पञ्चतन्मात्राओंकी

सत्ता संकल्पके बिना नहीं हो सकती और संकल्प जीवका ही धर्म है। अतः जहाँ सृष्टि है, वहाँ दृष्टि या उसका प्रकाशक चेतन अवश्य होना चाहिये। प्रकाशकके बिना प्रकाश और प्रकाश्य दोनोंहीकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती।

यहाँ कई लोगोंको ऐसी शङ्का हो सकती है कि वास्तवमें सच्चा ज्ञान तो इन्द्रियोंसे ही होता है। भाव या विचारसे जो उपलब्धियाँ होती हैं, उनकी तो जीवनमें कोई महत्ता नहीं है। परंतु बात बिलकुल उल्टी है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा भाव और भावकी अपेक्षा विचार अधिक महत्त्वशाली है। यह तो स्पष्ट ही है कि इन्द्रियोंकी अपेक्षा मन या हृदय अधिक सूक्ष्म है और उसकी सहायताके बिना इन्द्रियाँ अपने विषयोंको ग्रहण भी नहीं कर सकतीं, जब कि मन अपने व्यापारके लिये इन्द्रियोंकी कोई अपेक्षा नहीं रखता। इसी प्रकार बुद्धिके सहयोग बिना मन अपना व्यापार नहीं कर सकता, किंतु बुद्धिको अपने व्यापारके लिये मनकी अपेक्षा नहीं होती। अतः बुद्धि मनकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। हमारे सामने एक सौ रुपयेका नोट है। इन्द्रियदृष्टिसे तो वह एक कागजका टुकड़ा है, परंतु भावदृष्टिसे उसका मूल्य सौ रुपया है। इनमेंसे कौन दृष्टि जीवनमें अधिक उपयोगी है? इसी प्रकार किसी स्त्री-शरीरको यदि हम इन्द्रियदृष्टिसे केवल हड्डी-मांसका पिण्ड देखें तो उससे हमारे चित्तमें क्या सद्भाव होगा? इसके विपरीत यदि हम उसे माता या बहिन मानते हैं तो वह पूजा या स्नेहका विषय हो जाता है। यदि गहराईसे देखें तो विशुद्ध इन्द्रिय दृष्टि होनेपर तो किसी भी वस्तुका जीवनमें कोई विशेष उपयोग नहीं होता। उसका उपयोग तो भावदृष्टिसे ही निश्चित होता है। इन्द्रियदृष्टिसे तो काँच और हीरेमें कोई विशेष अन्तर नहीं होता, किंतु भावदृष्टिसे उनमें कितना अन्तर है? भावदृष्टिको छोड़कर तो न कोई व्यक्ति रह सकता है और न कोई व्यापार ही हो सकता है? कैसी अनोखी बात है कि संसारमें अपनेको बड़ा बुद्धिमान् माननेवाले लोग भगवान्‌की मूर्तिके आगे सिर झुकाना तो मूर्खता मानते हैं, किंतु राष्ट्रीय झंडेकी वन्दना करनेमें गौरव अनुभव करते हैं। क्या झंडा उनके इस अभिवादनका कोई आभार मानता है? केवल संस्कार-का ही तो खेल है, जिससे किसीकी झंडेमें पूज्यबुद्धि होती है और किसीकी भगवद्विग्रहमें। उपासनाकी यह पद्धति ही है कि वह किसी-न-किसी आश्रय या प्रतीकके द्वारा ही होती है। उसमें इन्द्रियदृष्टिसे तो प्रतीककी प्रधानता जान पड़ती है, परंतु उपासककी दृष्टिमें देवताकी प्रधानता होती है। जैसे गणेशजीका पूजन करनेके लिये एक मिट्टीकी डली कलावा बाँधकर रख लेते हैं। तब लोगोंको नेत्रोंसे तो मिट्टी ही दिखायी देती है, परंतु मिट्टी न तो उपासकके भावको ग्रहण कर सकती है न उसे कोई फल ही दे सकती है। यह सब तो गणेशजी ही करते हैं। वे क्रियाको नहीं देखते, भक्तके भावको देखते हैं। इसी प्रकार झंडेके द्वारा राष्ट्रकी पूजा होती है और चन्द्रपिण्डके द्वारा चन्द्रदेवकी।

इस बातको एक अन्य प्रकारसे भी समझ सकते हैं। हमारे सामने एक व्यक्ति है। यदि हम उसके विषयमें विवेचन करें तो इन्द्रियोंके द्वारा तो वह शरीर ही निश्चित होता है; किंतु यदि उसे केवल शरीर ही मानें तो एक पत्थरकी मूर्ति और मांसपिण्डमें क्या अन्तर होगा और पशुओंकी अपेक्षा हमारे ज्ञानमें भी क्या विशेषता होगी? मूर्तिके समान वह भी जड ही होगा। परंतु उसमें भाव और क्रिया भी तो हैं। यह भाव अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रियों-का धर्म है तथा क्रिया प्राण और कर्मेन्द्रियोंका। इनकी प्रधानता स्वीकार करनेपर वह शरीर नहीं, कर्ता-भोक्ता जीव सिद्ध होता है। इस प्रकार जो व्यक्ति अपनेको जीव मानता है, वह शरीरको अपनेसे भिन्न केवल अपना आश्रय-मात्र स्वीकार करता है। और भी गम्भीर विचार करनेपर जान पड़ता है कि कर्म और भोग भी दृश्यमात्र हैं, अतः वे द्रष्टा नहीं हो सकते। जिसे ऐसी दृष्टि प्राप्त हुई है, वह अपनेको कर्ता-भोक्ता भी नहीं मानता। उसे तो अपना-आप सर्वसाक्षी चिन्मात्र आत्मा ही जान पड़ता है। इस प्रकार इन्द्रिय, भाव एवं विचार—इन दृष्टियोंके भेदसे एक ही व्यक्ति शरीर, जीव और आत्मा निश्चित होता है और उत्तरोत्तर दृष्टिसे पूर्व-पूर्व दृष्टि बाधित हो जाती है। इनमें पहली इन्द्रियदृष्टि है, यह भौतिक विज्ञानकी आधार है; दूसरी भावदृष्टि है, यह कर्म और उपासनाकी आधार है और तीसरी विचारदृष्टि है, यह ज्ञानकी आधार है। पहलीका लक्ष्य अङ्ग है, दूसरीका भोग और तीसरीका मोक्ष। इस प्रकार व्यक्ति एक होनेपर भी दृष्टिभेदसे उसके विषयमें तीन मत स्थापित होते हैं और उनके परिणाममें उनके लक्ष्य भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

आजकल भौतिकवादकी प्रधानता है। इसलिये जब

उसका कोई नवीन चमत्कार आविष्कृत होता है तो सरल साधकोंके चित्तोंमें भी हलचल मच जाती है। हमारे मनीषी महर्षियोंकी दृष्टि अधिदेव और अध्यात्मको विशेष महत्त्व देती थी। अतः उन्होंने जो कुछ कहा है, वह उन्हीं दृष्टियोंके आधारपर है। उनका लक्ष्य योग और मोक्ष है। भोगकी अपेक्षा इनका स्थान बहुत ऊँचा है। इन्द्रियोंकी तो वहाँ पहुँच ही नहीं है। वे तो केवल वस्तुके बाह्य आवरणको ही ग्रहण कर पाती हैं। उनके सूक्ष्म कारण और तात्त्विक स्वरूपमें तो उनका प्रवेश ही नहीं होता और वे ही उत्तरोत्तर वस्तुके वास्तविक स्वरूप होते हैं। जैसे हमारे सामने एक वस्त्र है। उसमें वस्त्रकी अपेक्षा तागा और तागेकी अपेक्षा रूई अधिक सत्य है; क्योंकि तागा वस्त्र-कालमें ही नहीं उसके पहले और पीछे भी ज्यों-का-त्यों रहता है तथा रूई तागेकी स्थितिके समय ही नहीं उसके पहले-पीछे भी रहती है। इस प्रकार अधिभूतकी अपेक्षा अधिदेव और अधिदेवकी अपेक्षा अध्यात्म अधिक सत्य है।

यह आपेक्षिकी सत्यता हुई इन तीन दृष्टियोंसे। इनसे भी अधिक सत्य है वह वस्तु जिसके विषयमें हम इन दृष्टियोंसे निर्णय करते हैं। इन दृष्टियोंमें तो दर्शकोंकी योग्यताके अनुसार भेद हो सकता है, परंतु वस्तु तो सबके लिये वही है। अतः वह निरपेक्ष सत्य है। वह कैसी है—यह कहा नहीं जा सकता; क्योंकि जो कुछ कहा जायगा, वह मन, बुद्धि या इन्द्रियोंके आश्रयसे ही होगा। अतः वह अशब्द है, अनिर्वचनीय है और अचिन्त्य है। उसके विषयमें कुछ न कहना ही वास्तवमें कहना है। वह सबसे विलक्षण होकर भी सर्वरूप है तथा सर्वातीत होकर भी सबकी सब कुछ है। वह इन दृष्टियोंसे परे है और उसीका इन तीनों दृष्टियोंसे भास होता है। अतः जिसके विषयमें जो कुछ कहा गया है, वह वास्तवमें उसीके विषयमें कहा गया है।

गायत्री-मन्त्रका रहस्य और समीक्षा

(लेखक—श्रीविजयशंकरजी द. दवे)

गायत्री-मन्त्र हिंदू-धर्मशास्त्रोंका प्राचीनतम महान् शक्तिशाली मन्त्र है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने इसको भारतका उद्बोधक मन्त्र कहा है।

मन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। कोई मन्त्र केवल बीजाक्षर रूप होते हैं। जैसे **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'**। दूसरे, प्रार्थनात्मक सरल भाषामें होते हैं। जैसे **'ॐ नमः शिवाय'**। गायत्री-मन्त्र बीजाक्षररूप और प्रार्थनात्मक दोनों ही है। व्याहृतिके रूपमें बीजाक्षर और फिर प्रार्थना—इस मन्त्रसे दोनोंका लाभ एक साथ ही प्राप्त होता है।

बीजाक्षरोंका मुख्य उपयोग उसकी ध्वनिका प्रभाव और उसका गूढार्थ जाननेसे होता है। सरल भाषाकी प्रार्थनासे गूढार्थ समझनेकी योग्यता न होनेपर भी भावना प्रभावित होती है।

योग तीन हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। गायत्री-मन्त्रमें ये तीनों योग बीजरूपमें निहित हैं।

'ॐ' जो ईश्वरका प्राचीनतम नाम है, उसके गुणोंका ज्ञान व्याहृतिसे होता है। व्याहृति ईश्वरके गुणोंका संकीर्तन है। जैसे 'भूः'—जीवन-प्रदान करनेवाला तत्त्व, 'भुवः'—रक्षा करनेवाला या दुःख-निवारण करनेवाला और 'स्वः'—सम्पत्ति और ऐश्वर्य आदि प्रदान करनेवाला तत्त्व।

'भूः' अर्थात् ईश्वर ही हमको जीवन देता है। अतएव जबतक ईश्वरकी कृपा है, हमारा अनिष्ट किसी प्रकार नहीं हो सकता। 'भुवः' अर्थात् ईश्वर ही हमारी रक्षा करता है। जहाँतक परमात्माकी कृपा रहेगी, हमारी कोई किसी प्रकार हानि नहीं कर सकता। 'स्वः' अर्थात् ईश्वर ही सुख-सम्पत्ति प्रदान करता है। अतएव उसकी कृपासे हम निरापद रह सकते हैं।

इसलिये परमात्मापर दृढ़ विश्वास रखकर शक्तिशाली बनो—गायत्री-मन्त्रका यह आदेश है।

इससे स्पष्ट है कि मनुष्य चाहे कितना भी हताश हो, उसमें प्राण फूँककर शक्तिशाली, अडिग और आत्मबलसे सम्पन्न और समर्थ बनानेकी क्षमता गायत्री-मन्त्रमें है। इस प्रकार गायत्री-मन्त्रमें मनुष्यके अस्तित्वका अमोघ तत्त्व निहित है।

पूरा अर्थ समझकर गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला अत्यन्त साहसी होता है; वह कभी कायर नहीं हो पाता। ईश्वरसे श्रद्धा और विश्वास हट जानेपर कोई भी वर्ग, समुदाय और जाति आधारशून्य और दुर्बल होकर पराधीन बन जाती है।

उपर्युक्त भावनाओंके साथ मन्त्रानुष्ठान करनेसे आत्मशक्तिकी प्राप्ति होती है। केवल व्याहृतिका ही अर्थ जानकर प्रेम और विश्वासपूर्वक लगनसे जप करनेवालेको कभी पराधीन बननेका अवसर नहीं आता और वह किसी भी धर्मान्ध-समुदायसे भयभीत न होकर उसका सामना कर सकता है।

गायत्रीका दूसरा भाग **'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि'** है। हम उस वन्दनीय परमात्माके कल्याणकारी तेजका ध्यान करते हैं। यह एक कर्म है। अतएव यह 'कर्मयोग'का उपदेश है।

'धियो यो नः प्रचोदयात्' परमात्मा हमारी बुद्धिको सन्मार्ग-प्रदर्शन करें। यह अन्तिम और तीसरा भाग स्पष्ट-रूपसे प्रार्थना है, जो 'भक्तियोग' हुआ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गायत्री-मन्त्रमें ज्ञान, कर्म और भक्तियोगके बीज निहित हैं।

मन्त्रके अर्थको समुचित रूपसे समझकर किया गया जप सबसे अच्छा है; किंतु मन्त्रार्थ न समझनेपर भी उसका शुद्ध उच्चारण करते समय उससे उत्पन्न होनेवाले वायुके कम्पनका अत्यन्त उपयोगी प्रभाव पड़ता है। जैसे राग-रागिनियोंसे सर्वथा अपरिचित हिरन वीणाकी मधुर स्वर-लहरीपर स्तब्ध खड़े रह जाते हैं।

गायत्री-मन्त्रका जप करते-करते हमारे शरीरमें होनेवाली उसकी प्रतिक्रियाओंके निरीक्षणसे विदित होता है कि करोड़ रज्जु आदिमें स्थित चक्रोंसे प्राणके ऊपर चढ़नेसे चक्रोंमें गति मालूम होती है और लगता है कि कमलकी पंखुड़ियाँ खुलती और बंद हो रही हैं।

चक्रोंमें होनेवाली इस क्रियासे कुण्डलिनी-शक्ति धीरे-धीरे अवश्य जाग्रत् होगी। अतएव चाहे अधिक देरसे ही सही, फिर भी बिना गुरुके ऐसी यौगिक शक्तिके विकासका यह एकमात्र अत्यन्त सरल और निरापद—निर्विघ्न उपाय है।

गायत्री-संहिताके २५वें मन्त्रका हिंदी-अनुवाद नीचे दिया गया है। इसके पढ़नेसे उपर्युक्त कथनकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी।

गायत्री-मन्त्रके अक्षरोंका गुम्फन इस प्रकार हुआ है, जिससे समस्त गुह्य योग-ग्रन्थियाँ जाग्रत् हो जाती हैं।

गायत्री-मन्त्रका अर्थ—'ॐ प्रभु ही हमको जीवन-प्रदान करते हैं। वही हमारी रक्षा करते हैं और वही हमें सुख-सम्पत्तिका दान करते हैं। उन सर्वसमर्थ ईश्वरके कल्याणकारी तेजका हम ध्यान करते हैं। वे प्रभु हमारे जीवन-रथके सारथि बनकर हमारी बुद्धिको मार्ग-प्रदर्शन करें।'

यह मन्त्र अन्तःकरणसे प्रार्थना करनेवालेकी रक्षा करता है और अपने 'गायत्री' नामकी यथार्थता सिद्ध करता है।

परमात्मा तुम्हारा मार्ग-प्रदर्शन करता है, इस कारण हृदयमें दृढ़ श्रद्धा और विश्वास रक्खो कि कोई भी प्राणी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकेगा। यह प्रार्थना मन, वचन और कर्मसे समुचित रूपमें करनी चाहिये। उसका चिन्तन, मनन और तदनुकूल जीवनमें, जीवनके प्रत्येक व्यवहारमें उसका पालन करना चाहिये।

प्रार्थना करते समय उसका क्या मानसिक प्रभाव पड़ता है, इसका निरीक्षण करनेसे प्राणशक्ति सब चक्रोंमेंसे पार होकर लंबे गोल आकारमें घूमती हुई मालूम होगी। शरीरमें पैरोंके ऊपरी भागसे मस्तिष्कके भागतक यह प्राणशक्ति गति करती हुई विदित होगी।

वह जैसे-जैसे गतिशील होगी, वैसे-वैसे अधिक शक्ति उत्पन्न करेगी। गायत्री-मन्त्रका जप करनेसे हमारे शरीरमें शक्ति-उत्पादिका क्रिया प्रारम्भ होती है। कुण्डलिनी जाग्रत् होनेपर हम जो भी दृढ़ संकल्प करते हैं, उसका दूसरेपर पूरा प्रभाव पड़ता है। जैसे व्यक्तिका स्वभाव बदला जा सकता है और रोग-निवारणमें सहायता की जा सकती है, वैसे ही इस फलको पूरा प्राप्त करनेके लिये प्रभुका आश्रय ग्रहण करना चाहिये और प्रार्थनाका रहस्य समझकर उसके अनुसार आचरण भी करना चाहिये।

प्रार्थनामें हम प्रभुके द्वारा मार्ग-दर्शन चाहते हैं, अतएव उस प्रभुको प्रसन्न करनेके लिये अपनेमें दैवी-सम्पदाके गुणोंका विकास करना आवश्यक है। दैवी और आसुरी प्रकृतिके

गुणोंका गीताके सोलहवें अध्यायमें विस्तृत विवेचन हुआ है। साधकको उसे अवश्य जान लेना चाहिये।

जिस तरह कारखानोंमें मोटरकी शक्ति उत्पन्न होती है, उसी तरह अलग-अलग चक्रोंमें प्राणका वहन होनेसे हमारे शरीरमें शक्तिका संचालन होता है। जिस तरह घड़ीके फिरनेवाले एक चक्रके दाँतके धक्केसे दूसरे चक्र घूमने शुरू हो जाते हैं और घड़ीका सारा यन्त्रसमूह गतिशील हो जाता है, उसी प्रकार गायत्री-मन्त्रका जप ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्राणशक्तिमें वृद्धि होती है और वह उत्तरोत्तर शक्तिशालिनी होती जाती है।

अब भूः, भुवः, स्वः का उच्चारण करनेसे प्राणशक्ति शरीरके किस भागमें संचालित होती है और उसका क्या रहस्य है? इसपर दृष्टिपात करें।

'भूः' जीवनतत्त्व (अङ्गबल) का स्थान नाभिके नीचे मणिपूर चक्रमें है। 'भूः' का उच्चारण करते समय नाभिके नीचे मणिपूर चक्रमें स्पन्दन मालूम होगा। 'भुवः' का उच्चारण करते समय प्राणशक्ति नाभिके नीचे स्थित मणिपूर चक्रसे प्रसरित होकर हृदयके पास अनाहत चक्रमें प्रवेश करती मालूम होगी।

'स्वः' सम्पत्ति-ऐश्वर्य आदि देनेवाले तत्त्व (बुद्धिबल) का स्थान सहस्रार चक्र अर्थात् मस्तिष्कमें है। 'स्वः' का उच्चारण करते समय प्राणशक्ति अनाहत चक्रसे आगे जाकर सहस्रार चक्रमें प्रवेश करती है।

व्याहृतिके बाद ॐ का उच्चारण करनेसे प्राणशक्ति सहस्रार चक्रसे निकलकर हमारे सामनेके आकाशमें प्रसरित होकर पुनः नाभिके मणिपूर चक्रमें प्रवेश कर चक्राकार गति पूरी करेगी।

इस तरह **'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।'** का उच्चारण करनेसे एक-एक बार चक्राकार गति पूरी होगी। गायत्री-मन्त्रके उच्चारणसे हमारी प्राणशक्ति चार चक्कर पूरा करके शरीरके समग्र यन्त्रोंको पूर्ण गतिमें रखकर शक्ति उत्पन्न करती है।

गायत्री-मन्त्र श्रेष्ठ मन्त्र है। **'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'** अर्थात् विनाशका अवसर उत्पन्न होनेपर सर्वप्रथम बुद्धि ही विकृत हो जाती है। शुभाशुभका विचार करनेकी क्षमता नहीं रह जाती। अतएव उत्कर्षकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति सद्बुद्धिसे अधिक अच्छी वस्तु और क्या माँग सकता है और यही हम गायत्री-मन्त्रके द्वारा माँगते हैं।

गायत्री-मन्त्रसे हम प्रभुसे सामीप्य, रोग-निवारण—शारीरिक शक्ति एवं आत्मबल तथा सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये अर्थात् इन तीनोंकी प्राप्तिके लिये बुद्धि एवं मेधा प्रदान करनेके लिये भगवान्से प्रार्थना करते हैं।

ईश्वर हमारे सम्मुख उपस्थित होकर हमें अङ्गबल, आत्मबल और ऐश्वर्य नहीं देता, अपितु ब्रह्मचर्यका पालन कर शारीरिक शक्तिकी वृद्धिके लिये, साहस रखकर दुःख दूर करनेके लिये और सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये तदनुकूल बुद्धि प्रदान करता है। कहा भी है—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्॥

'देवता ग्वालेकी तरह हाथमें लाठी लेकर किसीकी रक्षा नहीं करते, बल्कि वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे समयोचित बुद्धि प्रदान कर देते हैं।'

जगत्में किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्रको सम्मानित स्थान प्राप्त करनेके लिये इन तीनों शक्तियोंकी नितान्त आवश्यकता है। इसका ज्ञान प्रत्येक समझदार व्यक्तिको होना ही चाहिये। जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र इसकी उपेक्षा करेगा, उसकी स्वतन्त्रताके लिये सदा ही भय बना रहेगा। इतिहास साक्षी है। एक समय इन तीनों शक्तियोंके लिये जन-समुदायका संगठन भी आवश्यक है।

एक बार मार्गमें चलते हुए राजनीतिके आचार्य चाणक्यके पैरमें एक कुश चुभ गया। बस, आचार्य चाणक्यने उसकी उपेक्षा करनेके स्थानपर सम्पूर्ण दर्भका ही ध्वंस कर डाला। उन्होंने ऐसा क्यों किया? इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने बताया कि 'रोग और शत्रुको प्रारम्भमें ही नष्ट कर देना चाहिये।'

दुःखोंसे त्राण पाने और सुख-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये व्याहृतिमें प्रार्थना की गयी है। यह बात सृष्टिके सारे प्राणियोंपर लागू है। कोई भी प्राणी और मनुष्य इसीकी कामनासे इसी आशयकी प्रार्थना करता है। इस कारण गायत्री दुनियाके सम्पूर्ण मानव-जातिकी सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना है।

'भुवः' और 'स्वः'के अनेक अर्थ संस्कृत भाषामें होते हैं; परंतु गायत्रीमें उनका अर्थ अन्तरिक्ष या स्वर्ग नहीं है;

अपितु 'दुःख दूर करो और सुख प्रदान करो' इतना ही है। नीचेके उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

हिंदू-जातिमें चाहे सब लोग गायत्री-मन्त्रका जप न करते हों, किंतु उनकी प्रार्थनाओंमें ये दोनों कामनाएँ होती ही हैं—

१. आपदामपहर्तारं·····नमामि अहम्।

(रामरक्षा)

२. आपद् उद्धारिणी आद्या आनन्ददात्री च·····

प्रणमामि अहम्।

(जगदम्बाकी स्तुति)

—इन प्रार्थनाओंमें गायत्री-मन्त्रका ही अनुकरण हुआ है। समस्त देवताओंकी स्तुतियोंमें ये दो बातें प्रधान रूपसे होती हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी देवताकी मूर्ति या चित्रमें अभय और वरद—दो मुद्राएँ होती हैं। इसका अर्थ यही है कि 'देवता हमारी रक्षा करें और सुख दें।' अन्तरिक्ष और स्वर्ग-जैसा 'भुवः' या 'स्वः' का अर्थ त्याज्य है।

हिंदू-धर्म, साहित्य और सम्प्रदायोंमें गायत्री विभिन्न रूपोंमें व्याप्त है। उदाहरणोंसे यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी।

जीवनदाता—रक्षक, बुद्धिबल एवं सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला ईश्वर है। हिंदू-धर्ममें ईश्वरकी ये तीन विभूतियाँ मानी गयी हैं।

पहला स्वरूप—जीवनदाता

पवनपुत्र हनुमान्‌जी हमारे सम्मुख ब्रह्मचर्यका आदर्श रखकर शारीरिक शक्तिके विकासका आदेश देते हैं। साथ ही भक्ति और आज्ञा-पालनका आदर्श उपस्थित कर इसकी प्रेरणा प्रदान करते हैं।

दूसरा स्वरूप—चण्डी

साहस और शक्तिसे अनाचारी भयंकर असुरोंका नाश करनेके लिये आत्मबल बढ़ानेका बोध कराता है। हमें भी उसी प्रकार साहस, शक्ति एवं आत्मबल संचित कर अनाचार-दुराचारपर विजय प्राप्त करनेका आदेश इस स्वरूपमें है।

तीसरा स्वरूप—स्वरूप

विरक्त, समर्थ एवं भगवद्भक्त गुरुसे ज्ञान प्राप्त कर बुद्धिबल बढ़ाने, प्राकृतिक शक्तियोंको नियन्त्रित कर ऐश्वर्य प्राप्त करनेका आदेश देता है। गायत्री-मन्त्रका जप यन्त्रवत् न कर इन तीनों शक्तियोंकी वृद्धिका संकल्प लेकर, समाजमें आदर्शकी स्थापना कर अग्रसर होना चाहिये।

इस आदर्शको भूलनेवाला समाज पराधीन बन जाता है। इसलिये संसारके सभी देशोंपर दृष्टि रखकर इन तीनों शक्तियोंमें एकका भी अभाव न हो, यह सदा ध्यान रखना चाहिये और इस प्रकार गायत्री-मन्त्र-जपके महान् उद्देश्यको सार्थक करना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचनसे पाठकोंकी समझमें आ गया होगा कि गायत्री-मन्त्रके जपसे हम दुःख दूर करने एवं सुखकी प्राप्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं और इस मन्त्रमें नामके सर्वथा अनुरूप गुण विद्यमान है। गायत्री-मन्त्र जापकका रक्षण करता है। इसके कितने ही उदाहरण धार्मिक साहित्यमें हैं और आज भी कितने महापुरुषोंने इस महान् मन्त्रके जपका अमित प्रभाव देखा है। मेरे जीवनमें भी इस प्रकारकी अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं कि भगवान्‌की कृपा देखकर चमत्कृत हो जाना पड़ा है। सर्वथा अस्वाभाविक घटनाएँ मेरे अनुकूल बन गयी हैं और अब तो मुझे पद-पदपर दैवी-कृपाका चमत्कार देखनेमें आता है।

संसार-सत्य

कवित्त—आते जो यहाँ हैं, उन्हें जाना पड़ता है कभी—नियम जगत्‌का, जिसे हैं सब जानते।
किंतु काम-क्रोध-लोभमें, वे नित रत रहें—भ्रान्ति-भावनामें, अपना हैं हित मानते॥
स्वर्ग तथा नरक-कहानी कहें और सुनें—सत्यके महत्त्वको, सदैव अविधानते।
कहे 'कवि पुष्कर' कलंकी कलिग्रास बनें—और दिव्य दृष्टिसे, न तथ्य पहचानते॥

दोहा—माया-मोहित हो, अहो! करते गुरुतर पाप।
अहंकारसे मूढ़ हो, सहते निशिदिन ताप॥

—जगन्नारायणदेव शर्मा, 'कविपुष्कर' शास्त्री

श्रीराधामाधवका दिव्य स्वरूप

(श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सं० २०२६पर, गोरखपुर, गीतावाटिकामें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन)

दूरादपास्य स्वजनान् सुखमर्थकोटिं
सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः ।
वर्षन्तमेव सहजाद्भुतसौख्यधारां
श्रीराधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ॥
अमन्दप्रेमाङ्कुरलथसकलनिर्बन्धहृदयं
दयापारं दिव्यच्छवि मधुरलावण्यललितम् ।
अलक्ष्यं राधाख्यं निखिलनिगमैरप्यतितरां
रसाम्भोधेः सारं किमपि सुकुमारं विजयते ॥

श्रीराधामाधव—रसतत्त्व और प्रेमतत्त्व

भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप हैं । सत्, चित्, आनन्द—ये तीनों शक्तियाँ नित्य ही पूर्णरूपमें उनके स्वरूपगत हैं । शक्ति और शक्तिमान्में कोई भेद नहीं होता । इन परात्पर भगवान्के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है । पर इनकी शक्तियाँ जहाँ अमूर्तरूपमें हैं, वहाँ लीलाका प्राकट्य नहीं है और जहाँ मूर्तरूपमें हैं, वहाँ वे नित्य अभिन्न होते हुए भी भिन्नरूपमें स्थित होकर नित्य लीला करती रहती हैं । जिस स्वरूपमें लीलाका प्राकट्य नहीं है, वह भगवान्का 'निर्विशेष ब्रह्मरूप है और जहाँ लीलाका प्राकट्य है, वहाँ वे 'सगुण निराकार परमात्मा' और 'सगुण साकार लीलापुरुषोत्तम भगवान् हैं' । भगवान्की अभिन्न स्वरूपाशक्तिकी लीलाके अनन्त भेद हैं; पर उनमें चिच्छक्ति, मायाशक्ति और जीवशक्ति—ये तीन प्रधान हैं । चिच्छक्ति 'अन्तरङ्गा', मायाशक्ति 'बहिरङ्गा' और जीवशक्ति 'तटस्था' हैं । ये मायाशक्ति और जीवशक्ति ही गीतोक्त 'परा' और 'अपरा' प्रकृतियाँ हैं ।

सत्, चित्, आनन्द—ये तीनों शक्तियाँ भगवान्से अभिन्न और एक ही शक्तिके तीन रूप हैं । इनमें 'आनन्द' चित्-स्वरूपाशक्तिका प्रत्यक्ष रूप है । आनन्द 'ह्लादिनी', सत् 'संधिनी' और चित् 'संवित्' शक्ति है । अन्तरङ्गा चिच्छक्ति आनन्द ही ह्लादिनी श्रीराधा हैं । ये श्रीराधिका श्रीकृष्णकी सर्वथा अभिन्न नित्य स्वरूपाशक्ति हैं । मूर्तिमती ह्लादिनी शक्ति नित्य आनन्दाकर, आनन्दयोनि तथा आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णको अनिर्वचनीय मधुर दिव्य आनन्दका आस्वादन कराती हैं और उनके आनन्दसे स्वयं भी अचिन्त्य दिव्य सुखका आस्वादन करती हैं ।

श्रीकृष्ण श्रीराधाजीसे नित्य अभिन्न तथा सर्वथा एक होते हुए ही 'आनन्दब्रह्म'के प्रतिष्ठास्वरूप (**ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्**) परिपूर्णतम रसराज या अचिन्त्य रस-ब्रह्मतत्त्व हैं । इन श्रीकृष्ण और श्रीराधाके रूपमें ही वस्तुतः विशुद्ध अनन्य 'रस' और 'प्रेम' हैं । ये इस जड-प्राकृत जगत्से सर्वथा अतीत हैं । श्रीकृष्ण सर्वैश्वर्यरूप 'स्वयं भगवान्' हैं । उनमें जैसे दिव्य अनन्त ऐश्वर्यका प्रकाश है, वैसे ही उनकी अन्तरङ्गा स्वरूपाशक्ति ह्लादिनी श्रीराधाजीमें भी है । जैसे भगवान् श्रीकृष्णका असमोर्द्ध्व माधुर्य अनन्त ऐश्वर्यसे समावृत है, वैसे ही श्रीराधाजीके श्रीकृष्णाकर्षी परम मधुर स्वरूपपर भी ऐश्वर्यका दिव्य आवरण है । पर जहाँ अनावृत लीला है, वहाँ भगवान् सर्वाकर्षकत्वादि-स्वरूपभूत गुणोंसे सम्पन्न, मधुरतम अप्राकृत विचित्र लीला-विहार-परायण हैं । यह सर्वापेक्षा अन्तरङ्ग रसराज-स्वरूप ही 'रसतत्त्व' है और इस रसतत्त्वको नित्य नव-नव रूपमें आनन्द प्रदान करनेवाली अप्राकृत परमाह्लादस्वरूपा श्रीराधा ही 'प्रेमतत्त्व' हैं । ये नित्य एक ही दो रूपोंमें लीलायमान नित्य परस्पर आकृष्ट हैं । श्रीकृष्ण आकृष्ट हैं—प्रेमके लिये; और श्रीराधा आकृष्ट हैं—रसके लिये ! इनकी यह प्रेम-रसमयी अन्तरङ्ग-स्वरूपभूता लीला ही श्रीराधा-माधवका नित्य विलास-विहार है । इसमें सर्वदा सर्वत्र केवल पवित्रतम, प्राकृत जगत्से अतीत माधुर्य-ही-माधुर्य है ।

राधाजी श्रीकृष्णकी और श्रीकृष्ण राधाकी आत्मा

श्रीकृष्णकी आत्मा श्रीराधाजी हैं और राधिकाजीकी आत्मा श्रीकृष्ण हैं । दोनोंमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं है । भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर वियोग-दुःखकातरा रानियाँ कालिन्दी—यमुनाजीके तटपर आती हैं और कालिन्दीकी अधिष्ठात्रीदेवीको मूर्तिमती तथा प्रफुल्लित देखकर पूछती हैं—'जैसे हम श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी हैं, वैसे ही तुम भी हो; हम विरहाग्निमें जली जा रही हैं, पर तुम प्रसन्न दीखती हो । कल्याणि ! इसका कारण बताओ ।' रानियोंकी यह बात सुनकर यमुनाजी हँस

पड़ीं; फिर प्रियतमकी पत्नीके नाते उन्हें अपनी ही बहन मानकर उनके दुःखसे द्रवित होकर बोलीं—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ॥
तस्या एवांशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः ।
नित्यसंयोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्ययोगतः ॥
स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका ।

(स्कन्द०, भा० मा० २ । ११–१३)

"आत्मामें ही रमण करनेके कारण भगवान् श्रीकृष्ण 'आत्माराम' हैं और उनकी आत्मा हैं—श्रीराधाजी । मैं दासीकी तरह श्रीराधाकी सेवा करती रहती हूँ । उनकी सेवाके प्रभावसे भगवान्‌का विरह मुझे स्पर्श नहीं करता । भगवान्‌की जितनी भी रानियाँ हैं, सब श्रीराधाके ही अंशका विस्तार हैं । भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराधा सदा एक-दूसरेके सम्मुख हैं, उनका परस्पर नित्य संयोग है; इसलिये राधाके स्वरूपमें अंशतः विद्यमान श्रीकृष्णकी अन्य रानियोंको भी भगवान्‌का संयोग प्राप्त है (इस बातको वे जानतीं नहीं) । श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा ही श्रीकृष्ण हैं । उन दोनोंका प्रेम ही वंशी है ।"

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्माराम इति प्रोक्त ऋषिभिर्गूढवेदिभिः ॥

(स्कन्दपुराण)

"श्रीराधिकाजी भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं । उनमें सदा रमण करनेके कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष श्रीकृष्णको 'आत्माराम' कहते हैं ।"

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'मैं राधाके हृदयमें आत्मरूपसे स्थित हूँ'—

अहं राधाया हृदये आत्मरूपेण संस्थितः ।

श्रीराधाका तत्त्व, महत्त्व, स्वरूप आदि

श्रीराधाजीके तत्त्व, महत्त्व, स्वरूप, महाभाव, प्रेम तथा लीलाके शास्त्रोंमें असंख्य वचन हैं । यहाँ केवल भगवत्स्वरूप त्रिदेव—भगवान् शिव, भगवान् नारायण, भगवान् ब्रह्मा और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके कुछ वचन उद्धृत किये जाते हैं । इन वचनोंसे श्रीराधाजीके स्वरूप-महत्त्वका कुछ अनुमान हो सकेगा ।

भगवान् शिवके वचन

भगवान् शिव कहते हैं—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा ॥
आविर्भावस्तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद ।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः ॥

(नारदपञ्चरात्र, द्वितीय रात्रि, तृतीय अध्याय ५१, ५४)

'जैसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण प्रकृतिसे पर—अतीत हैं, वैसे ही श्रीराधा भी ब्रह्मस्वरूपा, निर्लिप्ता और प्रकृतिसे अतीत हैं । नारद ! समयपर उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है । हरिकी तरह ही वे भी अकृत्रिमा, नित्या और सत्यरूपा हैं ।'

राधा रासेश्वरी रम्या रामा च परमात्मनः ॥
रासोद्भवा कृष्णकान्ता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।
कृष्णप्राणाधिदेवी च महाविष्णोः प्रसूरपि ॥
सर्वाद्या विष्णुमाया च सत्या नित्या सनातनी ।
ब्रह्मस्वरूपा परमा निर्लिप्ता निर्गुणा परा ॥

(नारदपञ्चरात्र, द्वि० रा०, अ० ४ । ४८, ५०)

'परमात्माकी पराशक्ति राधा रासेश्वरी, रम्या, रामा, कृष्णकामिनी, रासोद्भवा, कृष्णकान्ता, कृष्णवक्षःस्थलस्थिता, कृष्णप्राणाधिदेवी और महाविष्णुकी भी प्रसू हैं । वे ब्रह्मस्वरूपा, परमा, निर्लिप्ता (संसारासक्तिसे सर्वथा रहित, निर्लेप), निर्गुणा (प्राकृत गुणोंसे अतीत स्वरूपभूत सौन्दर्य-माधुर्यादि गुणोंसे युक्त) एवं परा (प्रपञ्चातीत स्वरूपस्थित) हैं ।'

(२)

देवर्षि नारदजीसे भगवान् शिव कहते हैं—

अन्तरङ्गैस्तथा नित्यविभूतैस्तैश्चिदादिभिः ।
गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्णवल्लभा ॥
देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ।
सर्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥
ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः ।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥
सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः ।
नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णः शक्र इयं शची ।
सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णासौ यमो हरिः ॥

बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किंचन ।
चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥
इत्थं सर्वं तयोरेव विभूतिं विद्धि नारद ।
न शक्यते मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥

(पद्म०, पाताल०, अध्याय ८१ । ५२—५८)

"नारदजी ! श्रीकृष्णप्रिया राधा अपनी चैतन्य आदि नित्य रहनेवाली अन्तरङ्ग विभूतियोंसे इस प्रपञ्चका गोपन—संरक्षण करती हैं, इसलिये उन्हें 'गोपी' कहते हैं । वे श्रीकृष्णकी आराधनामें तन्मय होनेके कारण 'राधिका' कहलाती हैं । श्रीकृष्णमयी होनेसे ही वे 'परा देवता' हैं । सम्पूर्ण लक्ष्मीस्वरूपा हैं । श्रीकृष्णके आह्लादका मूर्तिमान् स्वरूप होनेके कारण मनीषीजन उन्हें 'ह्लादिनी' शक्ति कहते हैं । दुर्गादि त्रिगुणात्मिका शक्तियाँ उनकी कलाके करोड़वेंका भी करोड़वाँ अंश हैं । श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं । मुनिश्रेष्ठ ! इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है । श्रीराधा दुर्गा हैं और श्रीकृष्ण रुद्र । श्रीकृष्ण इन्द्र हैं तो ये शची (इन्द्राणी) हैं । वे सावित्री हैं तो ये साक्षात् ब्रह्मा हैं । श्रीकृष्ण यमराज हैं तो ये उनकी पत्नी धूमोर्णा हैं । अधिक क्या कहा जाय, उन दोनोंके बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है । जड-चेतनमय सारा संसार श्रीराधाकृष्णका ही स्वरूप है । नारदजी ! इस प्रकार सबको उन्हीं दोनोंकी विभूति समझो । मैं नाम ले-लेकर गिनाने लगूँ तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी उस विभूतिका वर्णन नहीं कर सकता ।"

भगवान् नारायणके वचन

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—

प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुन्दरी परा ॥
सर्वयुक्ता च सौभाग्यभागिनी गौरवान्विता ।
वामाङ्गार्धस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा ॥
परावरा सारभूता परमाद्या सनातनी ।
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥
रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः ।
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता ॥
रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी ।
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका ॥
परमाह्लादरूपा च संतोषहर्षरूपिणी ।
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी ॥
निरीहा निरहंकारा भक्तानुग्रहविग्रहा ।
वेदानुसारिध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणा ॥
दृष्टिदृष्टा न सा चैशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुंगवैः ।
वह्निशुद्धांशुकधरा नानालंकारभूषिता ॥
कोटिचन्द्रप्रभा पुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा ।
श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरी च सर्वसम्पदाम् ॥
अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या ।
यत्पादपद्मसंस्पर्शात् पवित्रा च वसुंधरा ॥
ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैर्दृष्टा च भारते ।
स्त्रीरत्नसारसम्भूता कृष्णवक्षःस्थले स्थिता ॥
यथाम्बरे नवघने लीला सौदामनी मुने ।
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतसं ब्रह्मणा पुरा ॥
यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ।
न च दृष्टं च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्य तु का कथा ॥
तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृन्दावने वने ।

(श्रीदेवीभागवत ९ । १ । ४४—५७)

"ये परमात्मा श्रीकृष्णको प्राणसे भी बढ़कर प्रिय हैं । सम्पूर्ण देवियोंकी अपेक्षा इनमें सुन्दरता अधिक है । इनमें सभी सद्गुण सदा विद्यमान हैं । ये परम सौभाग्यवती हैं । इन्हें अनुपम गौरव प्राप्त है । परब्रह्मका वामार्द्धाङ्ग ही इनका स्वरूप है । ये ब्रह्मके समान ही गुण और तेजसे सम्पन्न हैं । इन्हें परावरा, सारभूता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, मान्या और पूज्या कहा जाता है । ये नित्यनिकुञ्जेश्वरी रासक्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी हैं । परमात्मा श्रीकृष्णके रासमण्डलमें इनका आविर्भाव हुआ । इनके विराजनेसे रासमण्डलीकी विचित्र शोभा होती है । गोलोकधाममें रहनेवाली ये देवी 'रासेश्वरी' एवं 'सुरसिका' नामसे प्रसिद्ध हैं । रासमण्डलमें पधारे रहना इन्हें बहुत प्रिय है । ये गोपीके वेषमें विराजती हैं । ये परम आह्लादस्वरूपिणी हैं । इनका विग्रह संतोष और हर्षसे परिपूर्ण है । ये निर्गुणा (प्राकृतिक त्रिगुणोंसे रहित, स्वरूपभूत दिव्य-गुणवती), निराकारा (पाञ्चभौतिक शरीरसे रहित दिव्य चिन्मयस्वरूपा), निर्लिप्ता (लौकिक विषयरागसे रहित), आत्मस्वरूपिणी (श्रीकृष्णकी आत्मा) नामसे विख्यात हैं । इच्छा और अहंकारसे रहित हैं । भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने अवतार धारण कर रक्खा है । वेदोक्त विधिके अनुसार ध्यान करनेसे विद्वान् पुरुष इनके रहस्यको समझ पाते हैं । सुरेन्द्र एवं मुनीन्द्र

तथा ईश्वरकोटिके देवता भी अपने चर्म-चक्षुओंसे इन्हें देखनेमें असमर्थ हैं। ये नीले रंगके दिव्य वस्त्र धारण करती हैं, अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये रहते हैं। इनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है। इनका सर्वाङ्गसम्पन्न श्रीविग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। ये भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति एवं दास्यकी एकमात्र प्रदान करनेवाली तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाली हैं। श्वेतवाराहकल्पमें श्रीवृषभानुके घर पुत्रीके रूपसे ये पधारी हैं। इनके चरणकमलका संस्पर्श प्राप्तकर पृथ्वी परम पवित्र हो गयी है। मुने! जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं देख सके, वही ये देवी भारतवर्षमें सबके दृष्टिगोचर हो रही हैं। ये स्त्रीमय रत्नोंके सारसे प्रकट हुई हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर इस प्रकार विराजती हैं, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघोंमें बिजली चमक रही हो। इन्हें पानेके लिये ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की है। उनकी तपस्याका उद्देश्य यही था कि 'इनके चरणकमलके नखके दर्शन सुलभ हो जायँ, जिससे मैं परम पवित्र बन जाऊँ'। परंतु स्वप्नमें भी वे इन भगवतीके दर्शन प्राप्त न कर सके, फिर प्रत्यक्षकी तो बात ही क्या है। उसी तपके प्रभावसे ये देवी 'वृन्दावन' नामक वनमें ब्रह्माके सामने प्रकट हुई हैं—धराधामपर इनका पधारना हुआ है।"

भगवान् ब्रह्माके वचन

(१)

ब्रह्माजी श्रीराधासे कहते हैं—

त्वं कृष्णाङ्गार्धसम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः।
श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम्॥
नहि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम्।

× × ×

पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः॥
आत्मना देहरूपा त्वमस्याधारस्त्वमेव हि।
अस्यास्तु प्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः॥
किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा।
नित्योऽयं च तथा कृष्णस्त्वं च नित्या तथाम्बिके॥
अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाप्ययं केन निरूपितः।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय १५, १०१-२।

'तुम श्रीकृष्णके आधे अङ्गसे प्रकट हुई हो, अतः सभी दृष्टियोंसे श्रीकृष्णके समान हो। तुम स्वयं श्रीकृष्ण हो और ये श्रीकृष्ण स्वयं राधा हैं, अथवा तुम राधा हो और ये स्वयं श्रीकृष्ण हैं। इस बातका किसीने निरूपण किया हो, ऐसा मैंने वेदोंमें नहीं देखा है।'

× × ×

'जैसे समस्त ब्रह्माण्डमें सभी जीवधारी श्रीकृष्णके अंशांश हैं, उसी प्रकार उन सबमें तुम्हीं शक्तिरूपिणी होकर विराजमान हो। समस्त पुरुष श्रीकृष्णके अंश हैं और सारी स्त्रियाँ तुम्हारी अंशभूता हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी तुम देहरूपा हो, अतः तुम्हीं उनकी आधारभूता हो। माँ! इनके प्राणोंसे तुम प्राणवती हो और तुम्हारे प्राणोंसे परमेश्वर श्रीहरि प्राणवान् हैं। अहो! क्या किसी शिल्पीने किसी हेतुसे इनका निर्माण किया है? कदापि नहीं। अम्बिके! ये श्रीकृष्ण नित्य हैं और तुम ही नित्या हो। तुम इनकी अंशस्वरूपा हो या ये ही तुम्हारे अंश हैं, इसका निरूपण किसने किया है?'

(२)

श्रीब्रह्माजी श्रीकृष्णका स्तवन करते हैं—

अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं
श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्तवत्सलम्।
स्वयं त्वसंख्याण्डपतिं परात्परं
राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम्॥
गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो
लीलावतीयं निजलोकलीला।
वैकुण्ठनाथोऽसि यदा त्वमेव
लक्ष्मीस्तदेयं वृषभानुजा हि॥
त्वं रामचन्द्रो जनकात्मजेयं
भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम्।
यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं
श्रीदक्षिणा स्त्री पतिपत्निमुख्या॥
त्वं नारसिंहोऽसि रमा ह्रदीयं
नारायणस्त्वं च नरेण युक्तः।
तदा त्वियं शान्तिरतीव साक्षा-
च्छायेव याता च तवानुरूपा॥

त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था
कालो यदेमां च विदुः प्रधानम् ।
महान् यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि
राधा तदेयं सगुणा च माया ॥
यदान्तरात्मा विदितश्चतुर्भि-
स्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः ।
यदा विराड्देहधरस्त्वमेव
तदाखिलं वा भुवि धारणेयम् ॥
श्यामं च गौरं विदितं द्विधा मह-
स्तवैव साक्षात्पुरुषोत्तमोत्तम ।
गोलोकधामाधिपतिं परेशं
परात्परं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥
सदा पठेद् यो युगलस्तवं परं
गोलोकधाम प्रवरं प्रयाति सः ।

(गर्ग० गोलोक० १६ । २२–२८)

"आप अनादिकालसे वर्तमान तथा सबके उत्पत्ति-स्थान हैं । सर्वश्रेष्ठ 'पुरुषोत्तम' आपकी उपाधि है । आप अपने भक्तजनोंपर दया करनेवाले और 'श्रीकृष्ण' नामसे विख्यात हैं । समस्त ब्रह्माण्डोंके आप स्वयं स्वामी हैं । आपसे परे दूसरा कोई नहीं है । आप राधिकाजीके प्राणनाथ हैं । मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आप गोलोकके नायक हैं । आपकी लीलाएँ बहुत-सी हैं । अपने धाममें लीला दिखलानेवाली यह श्रीराधा भी लीलावती हैं । आप जहाँ वैकुण्ठाधिराज हैं, वहाँ ये वृषभानुकी लाड़िली ही 'लक्ष्मी' हैं । जब भूमण्डलपर आप श्रीरामचन्द्र हैं तो ये विदेहकुमारी 'सीता' हैं । आप श्रीविष्णु हैं तो ये 'कमलालया' । जब आप यज्ञावतार धारण करते हैं तो ये पत्नियोंमें शिरोमणि 'दक्षिणामूर्ति' बन जाती हैं । आप भगवान् नृसिंह हैं तो आपके हृदयमें स्थित इनका नाम 'रमा' है । आप नर-नारायणके वेषमें पधारते हैं तो ये 'शान्ति' कहलाती हैं । आपके साथ इनका अत्यन्त सादृश्य है । छायाकी भाँति ये निरन्तर आपका अनुसरण किया करती हैं । आप ब्रह्म हैं, तो ये 'तटस्था प्रकृति' (जीव) बन जाती हैं । जहाँ आप काल हैं, वहाँ ये 'प्रधान' रूपा हैं । जब आप संसारका बीजभूत महद्रूप धारण करते हैं तो ये 'सगुण माया'के रूपमें प्रकट होती हैं । आप मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार—इन चारोंसे युक्त अन्तरात्मा होते हैं तो इनका 'लक्षण' अथवा 'वृत्ति'के रूपमें अवतार होता है । आपके विराट्रूप होनेपर तो ये सम्पूर्ण चराचरको धारण करनेवाली 'धरा' नामसे प्रसिद्ध होती हैं । पुरुषोत्तम ! ये जो श्याम और गौर—दो प्रकारके रूप दिखायी देते हैं, स्वयं आपके ही तेज हैं । आप गोलोकधामके प्रभु हैं । महान् पुरुष भी आपके अधीन रहते हैं, आप परसे भी पर—अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं । मैं आपकी शरण लेता हूँ । जो पुरुष इस युगल-स्तवका निरन्तर पाठ करता है, उसे उत्तम गोलोकधाम, जो सबमें प्रधान गिना जाता है, प्राप्त हो जाता है ।"

भगवान् श्रीकृष्णके वचन

स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने ।
यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम् ॥
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नेर्दाहिका सती ॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम् ।
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम् ॥
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन ।
तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्तुं न च क्षमः ॥
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः ।

× × ×

त्वं मे शोभास्वरूपासि देहस्य भूषणं यथा ।
कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा ॥
श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम् ।
त्वं च श्रीस्त्वं च सम्पत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी ॥
सर्वशक्तिस्वरूपासि सर्वरूपोऽहमक्षरः ।
यदा तेजःस्वरूपोऽहं तेजोरूपासि त्वं तदा ॥
न शरीरी यदाहं च तदा त्वमशरीरिणी ।
सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥
त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।
ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने ।
आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः ॥
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
पूर्वान् सप्त परान् सप्त पुरुषान् पातयत्यधः ॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।
अज्ञानादावयोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥

पच्यन्ते नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड १५ । ५७—७०)

"सुमुखि राधे ! तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतमा हो । जैसी तुम हो, वैसा मैं हूँ; निश्चय ही हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है । जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिकाशक्ति और पृथ्वीमें गन्ध होती है, उसी प्रकार तुममें मैं नित्य व्याप्त हूँ । जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता तथा जैसे स्वर्णकार सुवर्णके बिना कदापि कुण्डल नहीं तैयार कर सकता, उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना सृष्टि-रचनामें समर्थ नहीं हो सकता । तुम सृष्टिकी आधारभूता हो और मैं अच्युत बीजरूप हूँ । साध्वि ! जैसे आभूषण शरीरकी शोभाका हेतु है, उसी प्रकार तुम मेरी शोभा हो । जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ, तब लोग मुझे 'कृष्ण' (काला-कलूटा) कहते हैं और जब तुम साथ हो जाती हो, तो वे ही लोग मुझे 'श्रीकृष्ण' (शोभाशाली कृष्ण-) की संज्ञा देते हैं । तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं सम्पत्ति हो और तुम्हीं आधारस्वरूपिणी हो । तुम सर्वशक्तिस्वरूपा हो और मैं अविनाशी सर्वरूप हूँ । जब मैं तेजः-स्वरूप होता हूँ, तब तुम भी तेजोरूपिणी होती हो । जब मैं शरीररहित होता हूँ, तब तुम भी अशरीरिणी हो जाती हो । सुन्दरि ! मैं तुम्हारे संयोगसे ही सदा सर्व-बीजस्वरूप होता हूँ । तुम शक्तिस्वरूपा तथा सम्पूर्ण स्त्रियोंका स्वरूप धारण करनेवाली हो । मेरा अङ्ग और अंश ही तुम्हारा स्वरूप है । तुम मूलप्रकृति ईश्वरी हो । वरानने ! शक्ति, बुद्धि और ज्ञानसे तुम मेरे ही तुल्य हो । जो नराधम हम दोनोंमें भेदबुद्धि करता है, उसका 'कालसूत्र' नामक नरकमें तबतक निवास होता है, जबतक जगत्में चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं । वह अपने पहले और बादकी सात-सात पीढ़ियोंको नरकमें गिरा देता है । उसका करोड़ों जन्मोंका पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है । जो नराधम अज्ञानवश हम दोनोंकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक घोर नरकमें पकाये जाते हैं ।"

श्रीराधाप्रेम—दिव्य मधुर-रस

प्राकृत जगत् कामजगत् है । इस प्राकृत जगत्में सभी कुछ जघन्य काम-दोषसे दूषित है । प्रकृतिसे पर, अज, अव्यय, अच्युत, रस-भावमय भागवत-राज्य दूषित काम-राज्यसे सर्वथा अतीत है । वहाँ जाकर तो काम जल-भुनकर भस्मका ढेर हो गया है, या यों कहना चाहिये कि चिन्मय 'रस-प्रेम'स्वरूप श्रीराधामाधव तथा श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा श्रीकृष्णरस-भावितचित्ता गोपाङ्गनाओंके प्रेमराज्यकी सीमामें कामका प्रवेश ही नहीं है । वहाँकी सारी रस-प्रेमकी दिव्य लीलाएँ इन्द्रियातीत, अप्राकृत, भावस्वरूपा होती हैं । इसीसे प्राकृत जगत्के स्थूल पाञ्चभौतिक देहाभिमानी, कर्मपरतन्त्र, मायाविजड़ित, कामकलुषचित्त लोग उस प्रपञ्चातीत सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीराधामाधवके प्रेमकी, उनके अत्यन्त निगूढ़ प्रेम-विलास-विहार-लीलाके स्वरूपकी वास्तविक धारणा ही नहीं कर सकते और श्रीराधामाधव तथा उनकी प्रेमलीलाको प्राकृत प्रपञ्चान्तर्गत स्थूल जगत्के स्त्री-पुरुषों—नायक-नायिकाओंके सदृश समझकर अपनी तमसाच्छादित बुद्धिका आश्रय लेते हैं तथा और भी घने अन्धकारमें पड़ जाते हैं !

यह प्रत्यक्ष है कि जगत्में जो कुछ भी, जितने भी, क्षुद्र और विशाल विचार तथा कार्य होते हैं, सभी 'आत्मसुखार्थ'—स्व-सुखवासनाकी पूर्तिके लिये होते हैं । बृहदारण्यक उपनिषद् (अध्याय ४ ब्राह्मण ५) में महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयीसे ठीक ही कहते हैं—

'न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति, आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।' आदि ।

'अरे, यह निश्चय है कि पतिकी प्रीतिके—पति-सुखके प्रयोजनके लिये पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजनके लिये पति प्रिय होता है; स्त्रीके प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजनके लिये स्त्री प्रिया हुआ करती है ।' इसी प्रकार पुत्र, वित्त, पशु, ब्राह्मण, क्षत्रिय, देवता, वेद आदि सभी कुछ उनके प्रयोजनके लिये नहीं, अपने प्रयोजनके लिये—अपने सुखके लिये ही प्रिय हुआ करते हैं । वस्तुतः जगत्में हमारा व्यवहार-व्यापार, आकर्षण, प्रेम, स्नेह, भक्ति, सेवा—सभी कुछ आत्मसुख-कामना, सीमित स्वार्थपरता, आत्मेन्द्रिय-सुखेच्छासे ही प्रेरित होते हैं । क्षुद्र भोग-स्वार्थ ही हमारे सारे कर्मोंके कारण होते हैं । यहाँतक कि भोग-त्याग, भजन-कीर्तन, संयम-तप तथा योग-ज्ञानादिके साधन भी प्रायः कामनामूलक

ही होते हैं। मोक्षप्राप्ति या दिव्य भगवत्-लोककी प्राप्तिकी कामना भी तो कामना ही है। वहाँ भी कुछ पानेके लिये दिया जाता है।

पर इस समर्पणमय प्रेममें कहीं भी आत्मसुखकी वासनाके गन्ध-लेशकी भी कल्पना नहीं होती। भक्तलोग इसीको 'व्रज-रस' कहते हैं। इसके चार भेद हैं—'दास्य', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'मधुर'। इसके पहले एक 'शान्त' रस है, जिसमें इन्द्रिय-मनपर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है और भक्त दास्यरसके स्तरपर पहुँच जाता है। इन चारोंमें सबकी अपेक्षा महत्त्वपूर्ण तथा श्रेष्ठतम रस है—'मधुर-रस'। इसी मधुर-रसका नाम 'गोपीप्रेम'या 'श्रीराधा-प्रेम' है। गोपाङ्गनाएँ श्रीराधाकी ही कायव्यूहरूपा हैं, इसलिये गोपीप्रेम या राधाप्रेम एक ही वस्तु है। तथापि प्रेमके प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—इन आठ स्तरोंमें सर्वोच्च महाभावका प्राकट्य श्रीराधामें ही है। ह्लादिनीका सार 'प्रेम' है और प्रेमका सार 'महाभाव'। अतएव श्रीराधा महाभावरूपा हैं।

निजेन्द्रियसुखकामनाका अभाव तो 'दास्यरति'में हो जाता है। परंतु पूर्णत्यागमय समर्पण, त्याग और समर्पणका भी समर्पण—केवल और केवल प्रियतम श्रीकृष्णके सुखकी स्वभाव-सहज स्वरूपताका लाभ राधामें ही होता है। वहाँ भोगत्याग, बन्ध-मोक्ष, अनुरक्ति-विरक्ति—सभीकी विस्मृति है। केवल प्रियतमका सुख ही जीवन है, फिर वह चाहे भोगमें हो या त्यागमें, बन्धमें हो या मोक्षमें, अनुरक्तिमें हो या विरक्तिमें। साधनकी भूमिकामें श्रीराधा या गोपी 'आश्रयालम्बन' है और प्रियतम श्रीकृष्ण 'विषयालम्बन'। परंतु प्रेमकी परिपक्व स्थिति आश्रयालम्बनको विषया-लम्बनमें परिणत कर देती है। प्रेमी प्रेमास्पद बन जाता है और प्रेमास्पद प्रेमी। प्राण-प्रियतमा राधा 'आराध्या' बन जाती हैं और प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण 'आराधक' बन जाते हैं। अवश्य ही राधा आराधन ही करती हैं, वह नहीं बदलतीं, वह आराध्या नहीं बनतीं; पर श्रीकृष्ण राधाभावके सौन्दर्य-माधुर्यसे प्रलुब्ध होकर राधाकी आराधना करने लगते हैं। दोनों सहज ही एक-दूसरेकी सुख-स्वरूपताको प्राप्त हैं। यहाँ 'मैं'को 'तुम' बन जाना पड़ता है। वस्तुतः है भी यही बात। जबतक अपना 'मैं'पन पृथक् रहता है, तबतक प्राणोंके साथ प्राणोंका, मनके साथ मनका और आत्माके साथ आत्माका पूर्ण एकत्व नहीं होता। अतएव तबतक प्रेम भी अस्थायी ही रहता है। पर जहाँ 'मैं' 'तू'में बदल जाता है, वहाँ प्रेमका चरम उत्कर्ष होता है। यही राधा-प्रेमका विलक्षण लक्षण है। इसीसे इस मधुर-रसका नाम 'उज्ज्वल रस' है; क्योंकि इसमें इन्द्रियोंकी तो बात ही नहीं, बड़े-से-बड़े भोगसुख तथा मोक्षतककी कामना-कालिमाका क्षुद्र कलुष-कण भी नहीं रह जाता। यही परम पवित्र प्रेम है।

जीव जबतक इस पवित्र प्रेमके मार्गपर आरूढ़ होकर नहीं चलने लगता, तबतक शान्ति-सुख उससे सदा दूर ही रहते हैं। यह सारा जगत्—जगत्के सभी नर-नारी, परात्पर 'रसतत्त्व' पुरुषोत्तम 'भगवान्' तथा 'प्रेमतत्त्व'-रूपा उनकी 'परा प्रकृति'के ही अंश हैं। अतएव इस जीव-जगत्में पुरुषमें 'रस' और नारीमें 'प्रेम'का कण विद्यमान है। पर वह इतना नगण्य है कि उसमें जीव कभी तृप्त नहीं होता। इसीसे वह जहाँ भी रस और प्रेम देखता है, वहीं पागलकी तरह दौड़ता है। पर भ्रमवश वह खोजता है इस रस और प्रेमको प्राकृतिक विषयोंमें ही। वह गरमीसे झुलसते हुए प्यासे हरिनकी भाँति एक विषयसे दूसरे विषयमें भटकता है, पर कहीं भी उसे शीतल सुधा-सलिल नहीं मिलता। उसकी पिपासा नहीं मिटती और उसके अपने जीवनकी ज्वाला शान्त नहीं होती। इसीसे वह सदा निराश, अशान्त, उद्विग्न, हजारों-हजारों चिन्ताओंकी ज्वालासे जलता और मोहवश नये-नये व्यर्थ-अनर्थके कर्मपाशमें बँधता रहता है। मनुष्य-जीवनके परम लाभसे वञ्चित रहकर यहाँ अशान्ति, दुःख, चिन्ताका जीवन बिताता हुआ शरीर छोड़ जाता है और मृत्युके पश्चात् बार-बार आसुरीयोनि और नरकोंकी यातना भोगनेको बाध्य होता है। इसका एकमात्र कारण यही है कि वह वास्तविक 'रस' तथा 'प्रेम'को नहीं जानता-पहचानता। उसे पता ही नहीं है कि श्रीकृष्ण और श्रीराधा ही 'रसतत्त्व' और 'प्रेमतत्त्व' हैं।

शरीर और नामकी 'अहंता' तथा जगत्के प्राणि-पदार्थोंकी 'ममता'के अज्ञानमें स्थित, विषय-विलास-विभ्रमग्रस्त, मोहावृत मनुष्य विषयोंमें सुखकी आशा रखकर निरन्तर परिस्थिति-परिवर्तन तथा विषयसुखकी सुलभता एवं विशालताके लिये राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मद, दर्प-अभिमान, द्रोह-हिंसा आदिके वश होकर व्यक्तिगत हेतुसे अथवा देश, राष्ट्र, धर्म, जाति, दल, मत, पंथ, सम्प्रदाय, भाषा, भूमिकी सीमा, स्वाभिमान-रक्षा, नीतिपरायणता,

सेवा और जन-कल्याण आदिके नामपर कलह, द्वेष, वैर, हिंसाकी सृष्टि करके जगत्‌को नरकमय बनाये रखता है।

सर्वत्यागसे ही समर्पणमय प्रेमका उदय

श्रीगोपी तथा श्रीराधाके समर्पणमय प्रेमसे जगत्‌के लोगोंको जो महान् त्यागकी शिक्षा मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह नियम है कि छोटे या बड़े, किसी भी क्षेत्रमें, व्यक्ति या समष्टिमें जितना अधिक दूसरेके लिये 'त्याग' होगा, उतना ही विशुद्ध प्रेम बढ़ेगा और जितना-जितना प्रेम बढ़ेगा, उतना-ही-उतना 'त्याग' अधिक होगा। यों त्याग और प्रेममें परस्पर होड़ लग जायगी और इससे मनुष्यका त्यागमय प्रेम-जीवन सर्वत्र सहज ही शुद्ध आनन्द तथा सुख-शान्तिका विस्तार कर देगा; क्योंकि प्रेम देना जानता है, लेना नहीं। आज यदि जगत्‌के सभी मानव अपने सुखको भुलाकर, अपने सीमित-स्वार्थको छोड़कर, अपने हितकी चिन्ता न कर दूसरेके स्वार्थको अपना स्वार्थ समझने लगें तो सभी सबको सुख पहुँचाने तथा सभी सबका हित करनेवाले हो जायँगे। इससे सभीका सहज सुख-हित-साधन होगा। संदेह तथा द्वेषवश उत्पन्न हुए मनके भयसे तथा स्वार्थ-साधनकी इच्छासे आत्मरक्षाके साधनोंका चिन्तन, निर्माण तथा संग्रह नहीं होगा। दूसरोंपर आक्रमण करनेके लिये विचार तथा तैयारी नहीं होगी। नये-नये विध्वंसक शस्त्रोंके निर्माण, भीषण समर-सज्जा, विशाल सैन्यवाहिनी, विनाशक कीटाणुओंका संग्रह और विज्ञानका दुरुपयोग नहीं होगा। रात-दिनकी अशान्ति, चिन्ता, भय, संदेहके साथ ही समय, बुद्धि, शक्ति और विशाल अर्थराशिकी बुरी तरहसे होती हुई बरबादी मिट जायगी। पर यह होगा तभी, जब लोग भगवान्‌की ओर 'त्यागमय प्रेम'के पवित्र समर्पण-मार्गपर अग्रसर होंगे। राधाभाव हमें यही सिखाता है। वहाँ 'तत्सुखसुखी'* भावके साथ 'अखिल आचारका अर्पण' तथा 'प्रियतमका मधुर सुख-स्मरण'† ही जीवनका स्वरूप बन जाता है। यही सच्चा 'अभेद-दर्शन' है। इसीमें यथार्थ 'समत्व' है। जहाँ मनमें अपना-परायापन है—निज-सुखकी वाञ्छा है, वहाँ कभी अभेद और समत्व नहीं हो सकता, यह निर्विवाद सत्य तथा सिद्ध है। श्रीराधा तथा गोपीके जीवन-दर्शनसे, उनके पवित्र प्रेमसे हमें यही सीखना है।

यही त्याग जब परमार्थ-क्षेत्रमें आ जाता है, (और आना ही चाहिये; क्योंकि मानव-जीवनका उद्देश्य भोग है ही नहीं, भगवान् हैं।) तो यह परम पवित्र प्रेम बनकर भगवान्‌के साथ अपने नित्य अभेदकी स्थितिको प्राप्त करा देता है। फिर बन्ध-मोक्ष या जन्म-मरणकी कल्पना नहीं रह जाती। जैसे प्रेमी भक्त भगवान्‌के लिये पागल हो जाता है, वैसे ही भगवान् भी भक्तके लिये पागल रहते हैं। वे अपनी सारी सत्ता—भगवत्ताको भुलाकर भक्तके 'हृदय' बन जाते हैं और उसे अपना 'हृदय' बना लेते हैं। श्रीराधा पूर्वराग करके जैसे श्रीकृष्ण-प्रेममें उन्मादिनी होती हैं, वैसे ही श्रीकृष्णमें भी राधाके प्रेममें पूर्वरागकी मधुर लीला होती है।

इस पूर्वरागके दस लक्षण बतलाये गये हैं—लालसा, उद्वेग, जडता, कृशता, जागरण, व्यग्रता, व्याधि, उन्माद, मोह और मरणोद्यम। ये सभी दिव्य होते हैं। जागतिक भोग-प्रपञ्चमें, कामकलुषित नर-नारियोंमें इनका विकास नहीं होता। इनके नामपर जो विरह तथा दर्शन-लालसाकी कल्पना की जाती है, वह सर्वथा स्वसुख-इच्छाको लेकर, कामनाके कलुषित भावको रखकर होती है। उसमें त्याग नहीं होता। इसीसे उसका परिणाम दुःख, उद्वेग, आसुरी-योनियोंकी तथा नरकोंकी प्राप्ति होता है। यदि वास्तवमें मनुष्य यथार्थ सुख चाहता हो तो उसके लिये यही एकमात्र परम साधन है और यही साध्य भी है।

गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

× × × ×

साधन सिद्धि राम पग नेहू।

× × × ×

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग राम पद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई॥

शुद्ध प्रेमकी झाँकी

शुद्ध प्रेम राधा-माधवका सहज मिटा देता सब चाह।
रहती नहीं मोक्ष-सुख-इच्छा, नहीं नरक-दुखकी परवाह॥

---

* नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम्। (नारदभक्तिसूत्र २४)

† नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति। (नारदभक्तिसूत्र १९)

भोगकामना, निज-इन्द्रिय-सुखकी न वासना रहती शेष।
हो जाते युग-युगके सारे दुःखप्रद अभाव निःशेष॥
मिट जाते मद-मान-गर्व-ममता-आसक्ति, ईर्षा-डाह।
छा जाते मन त्याग-प्रेम-आनन्द, नहीं रहता उर-दाह॥
लाभ-हानि, सुख-दुःख, शुभाशुभका रह पाता नहीं विवेक।
एकमात्र प्रियतम-सुख ही जीवन-स्वभाव—जीवनकी टेक॥
सहज समर्पण हो जाता सब, रहता नहीं किंतु वह याद।
कहीं तनिक अभिमान न रहता, होता प्रकट दैन्य अविवाद॥
पाता वह अनन्त सुख अनुपम प्रियतमको लख सुखी अगाध।
बार-बार सुख देनेकी बढ़ती परंतु उसके मन साध॥
त्याग बिना न कभी हो पाता प्रेमराज्यमें तनिक प्रवेश।
भुक्ति-मुक्ति, निजसुख-इच्छाका रहता नहीं तनिक-सा लेश॥
तब भगवान् स्वयं बन जाते उसके प्रियतम प्राणाराम।
जग उठती उनके मन 'रस-आस्वादन' की लालसा ललाम॥
रसमय, रसिक, रससुधा-सागर स्वयं नित्य जो हैं रसराज।
वे अतृप्त नित करते उस रसका आस्वादन, तज सब लाज॥
इसीलिये वे राधा-गोपीजनके रहते नित्य अधीन।
ऋण न चुका सकते वे उनका, नित्य मानते निजको दीन॥
राधा इधर मानती निजको, नित्य प्रेमधनकी कंगाल।
सदा सकुचती रहती, निज प्रति लख प्रियतमका भाव रसाल॥
इस पवित्रतम प्रेमराज्यका रख मनमें आदर्श महान।
मानवमात्र त्यागपथपर चल भजें नित्य रसनिधि भगवान॥
राधा-गोपी-प्रेम मधुर पावनका यह संदेश उदार।
दुर्लभ जो अति मधुर-सुधा-भगवद्रसका शुचि पारावार॥
मानव-जीवनका हो यह बस, एकमात्र शुभ लक्ष्य पवित्र।
शुद्ध प्रेम-रस-सागरमें निमग्न रहना संतत सर्वत्र॥
राधाष्टमी-महोत्सवका है केवल यही लाभ अति श्रेष्ठ।
एकमात्र श्रीराधामाधव बन जायें जीवनके प्रेष्ठ॥

इस प्रेमकी प्राप्तिके लिये हमें क्या करना चाहिये ?

यह पवित्र भगवत्प्रेम ही जीवनका परम लक्ष्य है—जो ऐसा मानकर अपना जीवन बनाता है, वही वास्तवमें मनुष्य कहलाने योग्य है। भोगोंमें आसक्त, अशान्त तथा पापजीवन मनुष्यसे तो कर्मके अनधिकारी पशु आदि भी श्रेष्ठ हैं। अतएव इस लक्ष्यको सामने रखकर इसके लिये दृढ़ संकल्प करके मानवको सतत प्रयत्नशील होना चाहिये। नीचे लिखे कुछ साधन इसमें सहायक और लाभप्रद हो सकते हैं—

(१) भगवत्प्रेमको ही जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य समझना और इसे हर हालतमें निरन्तर लक्ष्यमें रखकर ही सब काम करना।

(२) जहाँतक बने, सहज ही स्वरूपतः भोग-त्याग तथा भोगासक्तिका त्याग करना। जगत्के किसी भी प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें राग न रखना।

(३) अभिमान, मद, गर्व आदिको तनिक-सा भी आश्रय न देकर सदा अपनेको अकिंचन, भगवान्के सामने दीनातिदीन मानना।

(४) कहीं भी ममता न रखकर सारी ममता एकमात्र भगवान् प्रियतम श्रीकृष्णके चरणोंमें केन्द्रित कर देना।

(५) जगत्के सारे कार्य उन भगवान्की चरण-सेवाके भावसे ही करना।

(६) किसी भी प्राणीमें द्वेष-द्रोह न रखकर, सबमें श्रीराधामाधवकी अभिव्यक्ति मानकर सबके साथ विनयका, यथासाध्य उनके सुख-हित-सम्पादनका बर्ताव करना। सबका सम्मान करना, पर स्वयं कभी मान न चाहना, न कभी स्वीकार करना।

(७) जगत्का स्मरण छोड़कर नित्य-निरन्तर भगवान्के स्वरूप, नाम, लीला आदिका प्रेमके साथ स्मरण करना।

(८) प्रतिदिन नियत संख्यामें, जितना जो सुविधा-पूर्वक कर सकें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

या पहले 'हरे कृष्ण' से शुरू करके जप करना।

दिनभर इस सोलह नामके मन्त्रको रटते रहना। सुविधा हो तो कुछ समयतक इसीका कीर्तन करना। *

* जो लोग केवल श्रीराधामाधव नामका ही जप करना चाहते हैं, वे वही कर सकते हैं। यों तो 'हरे' 'कृष्ण' 'राम'—इनका भी अर्थ 'राधामाधवपरक' भी किया जाता है, अतएव राधामाधव-भावसे भी षोडशनाम-महामन्त्रका जप-कीर्तन हो सकता है—

(९) स्व-सुख-वाञ्छाका, निज-इन्द्रिय-तृप्तिका, अपने मनके अनुकूल भोग-मोक्षकी इच्छाका सर्वथा परित्याग करके भगवान् श्रीकृष्णको ही प्रियतम-रूपसे भजना तथा प्रत्येक कार्य केवल उन्हींके सुखार्थ करना।

(१०) आगे बढ़े हुए प्रेमी साधक 'मञ्जरी' भावसे उपासना कर सकते हैं। मञ्जरीभावका अर्थ है—अपनेको श्रीराधाजीकी किंकरी मानकर आठों पहर श्रीराधामाधवके सुख-सेवा-सम्पादनमें अपनेको सर्वथा खो देना—केवल सेवामय बना देना।

(११) अपने साधन-भजन तथा भगवत्कृपासे होनेवाली अनुभूतियोंको यथासाध्य गुप्त रखना।

(१२) सम्मान-पूजा-प्रतिष्ठाको विषके समान समझकर उनसे सदा बचना। बुरा कार्य न करना, पर अपमानको अमृतके समान मानकर उसका आदर करना।

उपर्युक्त बारह साधनोंको श्रद्धा-प्रेमपूर्वक अपनानेका प्रयत्न करनेपर श्रीराधामाधवकी सहज कृपासे हमारा जीवन उनके प्रेम-मार्गपर चलने लायक बन सकेगा, ऐसी आशा है।

आज श्रीराधाजन्माष्टमीका महोत्सव मनाने, श्रीराधा-माधवका पवित्र स्मरण करने तथा उनके सम्बन्धमें कुछ चर्चा करनेका सौभाग्य श्रीराधामाधवकी कृपासे ही मिला है। उनका बार-बार जय-जयकार करें।

प्रार्थना

राधा-माधव-पद-कमल बंदौं बारंबार।
मिल्यौ अहैतुक कृपा तें यह अवसर सुभ-सार॥
दीन-हीन अति, मलिन-मति, बिषयनि कौ नित दास।
करौं बिनय केहि मुख, अधम मैं, भर मन उल्लास॥
दीनबंधु तुम सहज दोउ, कारन-रहित कृपाल।
आरतिहर अपुनौ बिरुद लखि मोय करौ निहाल॥
हरौ सकल बाधा कठिन, करौ आपुने जोग।
पद-रज-सेवा कौ मिलै, मोय सुखद संजोग॥
प्रेमभिखारी पर्‌यौ मैं आय तिहारे द्वार।
करौ दान निज-प्रेम सुचि, बरद जुगल-सरकार॥
श्रीराधामाधव-जुगल हरन सकल दुखभार।
सब मिलि बोलौ प्रेम तें तिनकी जै-जै-कार॥

बोलो श्रीराधामाधवकी जय ! जय !!

अर्थ यों है—

'हरे'—

हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी। अतो हरेत्यनेनैव राधिका परिकीर्तिता॥

"जो श्रीकृष्णके मनको हरण करती हैं, वे 'हरा' हैं अर्थात् 'कृष्णमनोहरा' हैं। श्रीकृष्णाह्लादस्वरूपिणी वे श्रीराधिकाजी ही 'हरे' नामसे कही जाती हैं।"

'कृष्ण'—

आनन्दैकसुखस्वामी श्यामः कमललोचनः। गोकुलानन्दनो नन्दः कृष्ण इत्यभिधीयते॥

"जो आनन्द एवं सुखके एकमात्र स्वामी हैं और जो गोकुलको आनन्द देनेवाले तथा स्वयं आनन्दरूप हैं, वे आनन्द-रस-लीला-विग्रह कमललोचन श्यामसुन्दर ही 'कृष्ण' नामसे कहे जाते हैं।"

'राम'—

'रा'कारः श्रीमती राधा 'म'कारो मधुसूदनः। द्वयोर्विग्रहसंयोगाद् 'राम' नाम भवेत् किल॥

"'रा'कार श्रीमती राधाका और 'म'कार श्रीमधुसूदन—कृष्णका वाचक है। इन दोनों स्वरूपोंके संयोगसे 'राम' नाम बनता है।"

श्रीराधामाधव-जयजयकार

[श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके उपलक्ष्यमें]

श्रीराधा माधव, श्रीमाधव राधा—दोनों एक स्वरूप।
एक तत्त्व सच्चिदानन्दमय एक भाव-रस परम अनूप॥
दुग्ध-धवलता, अग्नि-दाहिका, रवि-आभा सब नित्य अभिन्न।
करते तदपि भाव-रस-पूरित लीला ललित पृथक्-परिच्छिन्न॥
राधा प्रकृति-परा, निर्लिप्ता, कृष्णस्वरूपा, कृष्णाराम।
कृष्णात्मा, कृष्णानुरागरूपा, कृष्णप्राणा अभिराम॥
कृष्णसुखाकांक्षारूपा केवल करती लीला अविराम।
प्रेमाधिष्ठात्री देवी, परमाद्या, रासेश्वरी ललाम॥
परमाह्लादरूपिणी, धन्या, मान्या, उच्चादर्श महान्।
कृष्ण-नित्य-आनन्दोदधिको भी करती आनन्द-प्रदान॥
सकल रूप-गुण-गर्व-हारिणी, कृष्णचित्त-हारिणि निष्काम।
नित्य-अतुल-निज-गौरवपूर्णा, नित गौरवविस्मृता तमाम॥
कृष्णस्तुता, कृष्ण-आराध्या, कृष्णवक्षवासिनी उदार।
कृष्णाराधनपरा, कर रही तत्सुखार्थ ही नित्य विहार॥
नित्य स्वरूपाशक्ति चिन्मयी, नित्य अजन्मा सर्वाधार।
मूलप्रकृति अयोनिजा लेती निज इच्छानुसार अवतार॥
नित्य दिव्य गोलोकविहारिणि निज-स्वरूप-सद्गुणसंयुक्त।
मधुर मनोहर बनी आज 'वृषभानुनन्दिनी' सुषमायुक्त॥
अतुल रूप-सौन्दर्य अनुत्तम शुचि माधुर्य नित्य तन धार।
आकर्षित करती सर्वाकर्षक श्रीकृष्णचित्त अविकार॥
निज-सुख-वाञ्छा-लेश-कल्पना-गन्ध-शून्य सर्वत्र पवित्र।
सतीशिरोमणि सर्वत्याग-प्रतिमा सजीव, अत्यन्त विचित्र॥
आज हुई थी प्रकट वही शुभ महाभावरूपा बड़भाग।
भूका शुचि सौभाग्य उठा था दुर्लभ आज सहज ही जाग॥
अतः मनावें आज हर्षभर महामहोत्सव हम सब लोग।
अर्पित हो जायें उनके ही, दिया जिन्होंने यह संयोग॥
करें युगल सरकार हमें निज दास-रूपमें अङ्गीकार।
बोलो मनसे, मुक्तकण्ठसे राधा-माधव-जय-जयकार॥

श्रीविष्णु या पुरुषोत्तम-तत्त्व

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

विचारकोंका अनुमान है कि ध्रुव मानो चुम्बकराशि है और समस्त लोकों एवं ज्योतिश्चक्र—तारागणोंका वही आकर्षण-बिन्दु है। इसीलिये सभी लोग मङ्गलादि ग्रहोंके भी ध्रुवों (South Pole and North Pole) की कल्पना करने लगे हैं, सर्वत्रसे ही कम्पासकी सुइयाँ उत्तरमें ध्रुवकी ओर आकृष्ट होकर दिशाओंका संकेत करती हैं। साधकगण उत्तर मुँह बैठकर साधना-ध्यान-समाधिका अभ्यास करते हैं तथा मुमुर्षु जीवको उत्तर सिर इसीलिये सुलाते हैं कि इसके प्राण ध्रुवके द्वारसे ब्रह्माण्ड भेदनकर वैकुण्ठ या विष्णुके रोम-कूपमें प्रविष्ट हो जायँ—

मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः।

भगवान् विष्णुके प्रत्येक लोममें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड धूलिकणके समान संलग्न हैं।* प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चन्द्र-सूर्य-ध्रुवादि हैं। ध्रुव ब्रह्माण्डके ऊर्ध्वभागमें तथा विष्णुलोकके समीप रहता है†। प्रत्येक ब्रह्माण्ड कपित्थ (कैथ) के समान अण्डकटाह तथा सप्तावरणोंसे आवृत रहता है—

कपित्थस्य यथा बीजं सर्वतो वै समावृतम्।
दशोत्तराण्यशेषानि मैत्रेयैतानि सप्त वै॥
अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च।
ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च॥

योगवासिष्ठ तथा रामचरितमानसादिमें इन विभिन्न आवरणयुक्त ब्रह्माण्डोंमें काकभुशुण्डादिके विचित्र विचरणकी चर्चा प्राप्त होती है। मानसके वक्तारूपमें वे गरुडजीसे स्वयमेव कहते हैं—

सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

× × ×

उदर माझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥

× × ×

एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक॥

---

* (क) रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।
(रामचरितमानस, बालकाण्ड २०१)

(ख) ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। (रामचरित, बाल०, दो० १९१ छंद ३)

(ग) ब्रह्माण्डाः परमाणवः। (अध्यात्मरामायण १। ३। २५)

(घ) ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान् प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्, गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं—इत्यादि
(प्रबोधसुधाकर २४२)

(ङ) अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च।

† सप्तावरणके विषयमें लिङ्गपुराण १। ३। २९–३४ का वर्णन देखने योग्य है। वहाँ कहा गया है कि ब्रह्माण्डके अन्तर्गत यह सारी द्यावापृथ्वी, नक्षत्रमण्डलोपेत सप्तद्वीपादि हैं। फिर यह ब्रह्माण्ड विस्तारमें अपनेसे चारों ओर दसगुना जल, उससे बाहर दसगुना तेज, पुनः उसके बाहर उससे दसगुने वायु, पुनः उसके दसगुने आकाश, पुनः दसगुना अहंकार एवं महत्तत्त्वसे आवृत है। इसीका भुशुण्डिने भेदन किया था। यही सात एक दूसरेके बादके आवरण 'सप्तावरण' पदवाच्य हैं। इनके नियामक ब्रह्मा है। ऐसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड हैं—

अण्डं दशगुणेनैव वारिणा प्रावृतं बहिः।
… … … … आकाशेनावृतो वायुरहंकारेण शब्दजः।
महता शब्दहेतुर्वै प्रधानेनावृतः स्वयम्।
सप्ताण्डावरणान्याहुस्तस्यात्मा कमलासनः।
कोटिकोटियुतान्यत्र चाण्डानि कथितानि तु॥
(लिङ्गपुराण १। ३। २९–३३)

ये श्लोक वायुपुराण १। ४। ८२–८७ तथा ब्रह्माण्डपुराण अध्याय ३। ८० से ८८ एवं ये ही भाव अग्निपुराण अध्याय १२०। ३–१५, विष्णुपुराण २। ७। २२–२७ और ब्रह्मपुराण अध्याय २। ३ में व्यक्त हुए हैं। भागवत २। १। ३५ की श्रीधरीटीका तथा आलवंदारस्तोत्रके 'दशोत्तराण्यावरणानि यानि च' में भी इसका निर्देश है।

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसि त्राता ॥

× × ×

महि सरि सागर सर गिरि नाना । सब प्रपंच तहँ आनहिं आना ॥
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेउँ जिनस अनेक अनूपा ॥

× × ×

प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा । देखेउँ बालबिनोद अपारा ॥
भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन ॥

(रामचरितमानस ७ । ७९–८१)

'जिस प्रकार धानके बीजसे धान्यमूल, नाल, पत्ते, अङ्कुर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष-कणादि उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार विष्णुशक्तिके आश्रयसे ये ब्रह्माण्ड तथा तदन्तर्वर्ती इन्द्र-सूर्य-चन्द्रादि लोक-लोकपाल तथा अम्बर, सागर, भूधर, सरोवर एवं अन्य प्राणिवर्ग उत्पन्न होते हैं'—

व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा ।
काण्डं कोषस्तु पुष्पं च क्षीरं तद्वच्च तण्डुलाः ॥
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः ।

× × ×

तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्याः समवस्थिताः ।
विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥

(विष्णुपुराण २ । ७ । ३८–४०)

योगवासिष्ठमें वसिष्ठजीके एक दूसरे ब्रह्माण्डमें प्रवेश करनेकी विस्तृत कथा है । उस ब्रह्माण्डका आवरण पत्थरका था और बाहरसे देखनेमें भी बहुत बड़ा न था । एक स्त्री जो विद्याधरी (वास्तवमें उस ब्रह्माण्डके ब्रह्माकी पत्नी थी वह) कही गयी है, उस पत्थरमें—शिलाखण्ड-रूपी ब्रह्माण्डमें बार-बार प्रवेश करती और बाहर आती, पर वसिष्ठजी समर्थ नहीं हो रहे थे । तत्पश्चात् उन्होंने पद्मासन बाँधकर समाधि लगायी और आधिभौतिक शरीरका परित्याग कर केवल चिन्मात्र संकल्पात्मक विग्रहद्वारा शिलावरणयुक्त अण्डकटाहका भेदन कर उस ब्रह्माण्डमें प्रवेश किया—

बद्धपद्मासनोऽथाहं समाधावुदितोऽभवम् ॥
सर्वार्थभावनात्यागे चिन्मात्रैकान्तभावितः ।

× × ×

ततः सत्यावधानैकघनाभ्यासेन देहके ।
समाधिभौतिकभ्रान्तिर्नूनमस्तमुपागता ॥

× × ×

महाचिद्व्योमता स्वच्छा प्रोदितेव तदाभवत् ॥

× × ×

सा प्रविष्टा ततः सर्गं तमनर्गलचेष्टिता ।
अहमप्यविशं तत्र संकल्पात्मा तया सह ॥

(योगवासिष्ठ ६ । २ । ६८ । २, ३, ५, ६; ६९ । ३)

उस शिलाखण्डके भीतर भी सूर्य-चन्द्रादि ग्रह, अम्बर, सागर, भूधर थे । वह विद्याधरी यद्यपि उस ब्रह्माण्डमात्रकी स्वामिनी थी, किंतु उसकी उसमें आसक्तिसे बड़ा ही अन्तःक्लेश हो रहा था—

विधिना तत्र बद्धास्मि वसाम्युपलयन्त्रके ।
न केवलमहं बद्धा यावद् भर्त्तापि तत्र मे ।
बद्धः सायन्तने पद्मकुड्मले षट्पदो यथा ॥

(योगवासिष्ठ ६ । २ । ६४ । ३६-३७)

उस ब्रह्माण्डकी प्रलय-लीला भी वसिष्ठजीने देखी थी ।

अग्निपुराण २१० । २ में ब्रह्माण्डदानको 'महादान' बतलाया है । अपरार्क १ । पृ० ३२२, दानसागर, हेमाद्रिदानखण्ड, मत्स्यपुराण अध्याय २७५, भविष्योत्तर-पुराण १७७ । ३ आदिमें ब्रह्माण्डनिर्माणकी विधि भी निर्दिष्ट है । इसमें आकाशोपरि अण्डकटाह-द्वय तथा लोकपालोंसहित विभिन्न लोकोंकी स्थापनाकी बात है । अब लोकपालोंके मध्यमें ऊपर ब्रह्माकी स्थापनाकी बात लिखी है । भविष्यपुराणमें समुद्र, पर्वत, नद-नदी, चतुर्दश भुवन, ग्रहादिके निर्माणकी विधि है । इस ब्रह्माण्डदानीको ब्रह्माण्डभेदनद्वारा विष्णुलोक-प्राप्तिकी बात भी मत्स्य० २७५ । १७ में निर्दिष्ट है—

इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्याद्
ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम् ।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारे-
रानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः ॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें बालकरूपी जनार्दन इन्द्रसे कहते हैं कि भगवान् विष्णुके लोमकूपसे उद्भूत जलमें ब्रह्माण्डरूपी नौकाएँ वैसी ही तरती हैं, जैसे कृत्रिम जलमें साधारण नौकाएँ—

महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले ॥
ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भवतोये च कृत्रिमा ।

एवं लोम्नः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाः सन्त्यसंख्यकाः ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० १ । ४७ । १०७-१०८)

वेदान्तभाष्यमें भगवान् शंकराचार्यने आध्यात्मिक योगबलद्वारा योगियोंके विभिन्न लोकोंमें शीघ्र-गमन तथा वहाँके स्वामियोंसे दर्शनादिकी बात भी लिखी है। नारदजी भी सर्वत्रगामी हैं—

एक बार करतल बर बीना । गावत हरि गुन गान प्रबीना ॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा । जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा ॥
(रामचरित० बाल० १२७ । ३-४)

पर रावण, हिरण्यकशिपु आदिको ये लोक सूने ही मिले—

दिगपालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ॥
(रामचरितमानस, बालकाण्ड १८१ । ७)

हिरण्यकशिपुने कहा कि हिरण्याक्षका वध करनेवाला विष्णु, लगता है अब मर गया—

क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान् समुद्रान्
विष्णुं विचिन्वन् न ददर्श वीरः ॥
अपश्यन्निति होवाच म्यान्विष्टमिदं जगत् ।
भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥
(श्रीमद्भा० ८ । १९ । ११-१२)

उसने सभी लोकोंको छान डाला, पर विष्णुका उसे कहीं भी पता न लगा। उसने पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा, आकाश, पाताल, समुद्र—सब ढूँढ़ डाले; पर वे कहीं न दिखायी दिये। तब वह कहने लगा कि 'मैंने सम्पूर्ण विश्व छान डाला; परंतु मेरा शत्रु विष्णु कहीं न मिला। हमारा भ्रातृघाती शत्रु निश्चय ही वहाँ चला गया, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता अर्थात् नष्ट हो गया।' इन असुरोंके वंशमें भी प्रह्लाद, विरोचन एवं बलि परम्पराज्ञानसे चतुर हुए। जब बलिको भी अपनी विश्व-विजयका अहंकार हुआ, तब विरोचनने उसे सावधान करते हुए बतलाया था कि तुम महाविष्णुको नहीं जानते, उनके एक रोमविवरमें अनेकानेक ब्रह्माण्ड टँगे हुए हैं। उनके दर्शन-ज्ञान बिना इस विश्वके दौड़-धूप—जयका कोई अर्थ नहीं, केवल आसुरी, कापेयी वृत्ति ही है, यह सब—

अस्ति पुत्रातिविनतो देशो विपुलकोटरः ।
त्रैलोक्यानां सहस्राणि यत्र सन्ति बहून्यपि ॥

यह कोटर विष्णुका रोमविवर ही है और ये त्रिलोकियाँ ही ब्रह्माण्ड हैं। ऐसी बातें अन्यत्र भी बहुत कही गयी हैं।

ऊपरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥
(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड)

इत्यादि।

भारतीय संस्कृति बहुत पुरानी है। पहले भी आसुरी-दैवी वैज्ञानिक शक्तियाँ प्रखर हुई थीं; पर योगियों, ऋषियोंने धर्म, शान्तिका महत्त्व समझा-समझाया था। गीताके अनुसार भौतिक उत्थान, भाग-दौड़, संघर्ष अशान्तिका ही मार्ग है और अशान्तिमें सुख कदापि नहीं है—'अशान्तस्य कुतः सुखम् ।' अशान्त बुद्धि चञ्चल होती है। चञ्चल बुद्धि कभी स्थिर न रहकर सदा दो कोटियोंको स्पर्श करती हुई संशययुक्त ही निर्णय करती है, जिसे वास्तवमें निर्णय भी नहीं कहा जा सकता। ऐसे ही संशयग्रस्त अशान्तात्माके लिये गीतामें भी कहा गया है—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥
(४ । ४०)

'जो (भगवद्विषयक विशुद्ध) ज्ञानसे रहित है, जो (सात्त्विक-) श्रद्धारहित है, जो संशययुक्त है, उसका विनाश निश्चित है। उस संशययुक्त पुरुषके लिये न यह लोक है, न (चन्द्र-सूर्यादि) परलोक है और न सुख-शान्ति ही है।'

इस अज्ञ तथा अस्थिरप्रज्ञ (चञ्चलबुद्धि) व्यक्तिके ठीक विपरीत ही होता है स्थिरप्रज्ञ, स्थितप्रज्ञ, प्रतिष्ठित-प्रज्ञ या सर्वसंशयरहित ज्ञानप्राप्त या भगवत्प्राप्त व्यक्ति। स्वयं साक्षात् श्रीभगवान्के ही श्रीमुखकी उक्ति है—

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥
(गीता ४ । ४१)

'एनं संशयं ज्ञानासिना छित्त्वा ।'
(४ । ४२)

अर्थात् यह संशय विशुद्ध-सात्त्विक ज्ञानद्वारा ही छेद्य है। 'स्थितप्रज्ञ'को 'ब्रह्मस्थ' भी कहा गया है; क्योंकि उसकी स्थितिको 'ब्राह्मी-स्थिति' भी कही गयी है। अतः भगवत्प्राप्त व्यक्ति ही सर्वथा संशयरहित हो

सकता है, यह भी सुस्पष्ट ध्वनित है। सारी गीता तथा समग्र भारतीय साहित्य एक स्वरसे केवल उस परमात्माको ही प्राप्त करनेमें श्रेय बतलाते हैं। तब भी लोगोंकी समझमें बात नहीं उतर पाती—

तमेवैकं विजानथ, अन्या वाचो विमुञ्चथ, अमृतस्यैष सेतुः।

(बृहदा० उप०)

'केवल उसी परमात्माकी बात करो, उसे ही जानो, अन्य जगच्चर्चा छोड़ो, वह परमात्मा ही अमृतका सेतु है।'

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १० । ९–११)

वह परमात्मा ही बुद्धियोग, प्रेम, आकर्षणादि प्रदान कर स्वयं शीघ्र प्राप्त होता है। वह दूर तथा परम विराट् होनेपर भी निकटतम एवं सूक्ष्मतम भी युगपत् ही है—

सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।

(गीता १३ । १५)

किमधिकम्, वह सबके हृदयमें ही है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

(गीता १८ । ६१)

अत्यन्त कृपालु होनेसे भजनेवालोंपर कृपा भी शीघ्र ही करता है और उसकी कृपासे निश्चय ही शान्ति भी मिलती ही है—

तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।

(गीता १८ । ६२)

फिर ऐसी महत्त्वपूर्ण सुखप्रद दिशाको छोड़ चन्द्रादि लोकोंकी यात्रा तो सर्वथा निष्फल, निरर्थक एवं अशान्ति-प्रद ही दीखती है। महाभारतमें भगवत्प्राप्तिके सम्मुख सभी लोकोंको नरकतुल्य ही कहा है—

तस्य स्थानपरस्येह सर्वे निरयसंज्ञिताः।

(शान्तिपर्व, जापकाख्यान)

और उसकी प्राप्ति शाश्वतोपलब्धि, श्रेष्ठ, शान्त, शाश्वत स्थानकी उपलब्धि है। (गीता १८ । ६२)

श्रीकृष्णनाम

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसा-
मा चण्डालममूकलोकसुलभो वश्यश्च मोक्षश्रियः।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षते
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः॥

(श्रीलक्ष्मीधर)

यह श्रीकृष्णनामात्मक महामन्त्र ऐसा विचित्र शक्तिशाली और सुलभ है कि जिह्वाके स्पर्शमात्रसे फलीभूत हो जाता है; यह आत्माराम आप्तकाम विशुद्धचित्त महापुरुषोंको भी अपनी ओर आकर्षित कर लेनेमें सर्वश्रेष्ठ वशीकरण है; यज्ञ, योग, तप, दानादिद्वारा भी नष्ट न होनेवाले बड़े-बड़े महापातकोंको भगानेमें एक विचित्र उच्चाटन-मन्त्र है; सर्व देश-कालादिमें कीर्तनीय होनेके कारण सुलभ भी इतना है कि गूँगे मनुष्यके सिवा चण्डालतक सभी इसका कीर्तन कर सकते हैं; कीर्तन करनेकी इच्छा मात्रसे ही यह अपनी अहैतुकी कृपासे वशमें हो जाता है और दुर्लभ मोक्षलक्ष्मी तो इसके पीछे-पीछे लगी डोलती है तथा दूसरे मन्त्रोंकी भाँति इसके लिये गुरुद्वारा दीक्षा, सदाचार और पुरश्चरण आदिकी भी अपेक्षा नहीं है।

श्रीराधाके प्रति

देवि ! तुम हो कौन ? बोलो, देवि ! तुम हो कौन ?
लोचनोंकी गति नहीं हो पा रही जिस ठौर,
हो नहीं पाती जहाँतक बुद्धिकी भी दौर ।
लौट आता मन थका पहुँचे बिना जिस पौर,
जा सकेगा फिर वहाँ किस भाँति कोई और ॥
दे सके परिचय तुम्हारा विज्ञ ऐसा कौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

सौरभित दक्षिण पवन छूकर तुम्हारी साँस,
और उस आमोदसे ही मोदमय मधुमास ।
प्रात-रविकी रश्मियोंमें स्वर्ण-कान्ति-विलास,
रम्य राकामें सुहाता मृदु मनोहर हास ॥
कौन दरसाये तुम्हारा भव्य भासुर भौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

है यदपि सर्वत्र सबमें व्याप्त तव आलोक,
चक्षु-गोचर किंतु किसके तव अलौकिक लोक ।
देख पाते हैं न जिसको देवता-देवर्षि,
जान पाते हैं न जिसको माननीय महर्षि ॥
जान लें कैसे उसे ये जीव जगके यौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

श्री विजय भव भूति भी तुम ही धवल ध्रुव नीति,
शक्ति हरिकी ह्लादिनी अनुरक्ति पुण्य प्रतीति ।
प्रीतिके अह्लानसे परिपूर्ण वंशीनाद,
रम्य राका-यामिनी तुम चाँदकी भी चाँद ॥
क्या कहीं तुम, क्या नहीं तुम—यह बताये कौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

ज्योति-अर्णवकी महत्तम तुम असीमित सिंधु,
विन्दु-शीकर व्योमके उडुगन तथा सुरसिंधु ।
लोक-मङ्गलके लिये व्रजमें लिया अवतार,
बूँदमें ज्यों सिंधु कोई हो उठे साकार ॥
मर्म ऐसी अघट घटनाका बुझाये कौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

प्रीति पावनकी बहायी वह रुचिर रसधार,
स्नान कर जिसमें रहे शीतल सदा संसार ।
मोरका जिनपर मुकुट है लोटता अभिराम,
उन तुम्हारे चारु चरणोंको सदैव प्रणाम ॥
पूर्णतः महिमा तुम्हारी कह सुनाये कौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

भानुको तुमने विभा, वृषभानुको आनन्द,
कीर्तिको दी कीर्ति, गोकुल चंदको उर चंद ।
मानको मानिनि तुम्हारे वह मिली मनुहार,
हारकर हरि हो गये जिससे गलेका हार ॥
जीत यह राधे तुम्हारी जान पाये कौन ?
मूक वीणा शारदाकी, श्रुति-गिरा भी मौन ॥
देवि ! तुम हो कौन ?

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'
(भाद्रपद शु० राधाष्टमी संवत् २०२६)

आज मानव क्या कर रहा है ?

आज एक 'धर्म'वाला दूसरे धर्मवालेकी, एक राजनीतिक दल दूसरे राजनीतिक दलकी, एक यूनियन दूसरे यूनियनकी, एक प्रदेशवासी दूसरे प्रदेशवालेकी, एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषीकी निन्दा करता है, उसे गाली देता है, नीचा दिखाता है, उसके घरों-दूकानोंमें आग लगाता है, धन-सम्पत्ति लूटता है और सब प्रकारसे उसका विनाश चाहता है । किसी स्थान या जमीनके लिये एक प्रदेशवाला दूसरे प्रदेशसे लड़ता, मार-पीट करता है; अनशन करता, आत्मदाह करता, आत्महत्या करता है । विद्यार्थीगण शिक्षा-भवनोंको तोड़ते-फोड़ते, उनमें आग लगाते, शिक्षकों और आचार्योंका तिरस्कार करते और उन्हें मारते हैं तथा शिक्षकगण विद्यार्थियोंके साथ विरोधभाव व्यवहार करते हैं । उत्तेजित जनसमूह रेलके डिब्बोंमें, सरकारी तथा गैरसरकारी बसों, मोटरोंमें आग लगाते हैं, लूट-मार करते हैं !

इनमें गुंडे-बदमाश भी हैं; पर पढ़े-लिखे, सुशिक्षित नेता तथा बुद्धिमान् कहलानेवाले लोग भी हैं । क्या उन्होंने कभी यह सोचा है कि इस प्रकारके जघन्य कार्योंसे धर्म, दल, यूनियन, भाषा, प्रदेश, विद्यार्थी, शिक्षक आदि--किसीका भला न होकर सबका विनाश ही होता है; परस्पर कटुता, वैर तथा भय बढ़ता है ? क्या इससे मनुष्य अपनेको छोटी-सी सीमामें बाँधकर अपना और सबका अनिष्ट नहीं कर रहा है और क्या अपने भविष्यको दुःख तथा नरकमय नहीं बना रहा है ? इसी प्रकार चलता रहा तो पता नहीं, मानवका कितना पतन होगा और उसे मिथ्या सुखकी खोजमें कितने अनन्त असह्य दुःखोंका भोग करना पड़ेगा । भगवान् सबको सद्बुद्धि दें ।

वेदमें व्याहृति-विचार

(लेखक—डॉ० श्रीसिद्धनाथजी शुक्ल)

[गताङ्क पृष्ठ ११४४से आगे]

ब्राह्मण-ग्रन्थोंके द्वारा यह निश्चित प्रतीत होता है कि व्याहृतिकी संख्या प्रारम्भमें तीन ही थी और उनका दार्शनिक आधार तीन लोक या उन्हीं लोकोंसे सम्बन्धित देवता थे। उनकी वह व्यापकता हमें आरण्यकों और उपनिषदोंमें और अधिक विकसित प्रतीत होती है। आरण्यकोंमें ऐतरेय आरण्यक (ऐ० आ०) ने 'भूः, भुवः और स्वः'—तीन ही व्याहृतियोंका नामाङ्कन किया है[३८]। साथ ही उनका तादात्म्य तीन वेदोंसे निरूपित किया है और अन्तमें सभीको प्राणमें समाहित बतलाया है, अर्थात् प्राण ही सब कुछ है, उसीका ज्ञान करना चाहिये[३९]। तै० आ० ने भी इसी दार्शनिक विचारको प्रश्रय दिया है। तीन व्याहृतियोंको स्वीकार करते हुए उसने पहली बार स्पष्टरूपसे 'महः' को चतुर्थ व्याहृतिके रूपमें ग्रहण किया और इसे ब्रह्म तथा आत्माका रूप माना। अन्य व्याहृतियोंको तीन लोकों, देवताओं, वेदों आदिसे सम्बन्धित बतलाया। 'भूः' पृथिवी, 'भुवः' अन्तरिक्ष, 'स्वः' द्यौ और 'महः' आदित्य है, अथवा 'भूः' अग्नि, 'भुवः' वायु, 'स्वः' आदित्य और 'महः' चन्द्रमा है। चन्द्रमासे ही समस्त ज्योतियाँ महिमामयी हैं; अथवा 'भूः' ऋक्, 'भुवः' साम, 'स्वः' यजुष्, 'महः' ब्रह्म है। ब्रह्मसे ही समस्त वेदोंकी महत्ता है। अथवा 'भूः' प्राण, 'भुवः' अपान, 'स्वः' व्यान और 'महः' अन्न है; अन्नसे ही समस्त प्राणी महनीय हैं। इन चारों व्याहृतियोंको जो जानता है, देवता उसके लिये बलिका आहरण करते हैं[४०]। अन्य स्थलपर भी व्याहृतिका तादात्म्य इसी प्रकार देवताओं और प्राणसे स्थापित कर कहा गया कि जो इसे जान लेता है, वह ब्रह्म, आत्मा, प्राण आदिका ज्ञानलाभ कर आनन्द, शान्ति और समृद्धिकी प्राप्ति करता है[४१]। इसी प्रकारसे यह स्थिति आत्मलीनता या स्थितप्रज्ञताकी कही जा सकती है, जिसका वर्णन मैत्रेयोपनिषद्में इस प्रकार किया गया है—

> समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
> निवेशितस्याऽऽत्मनि यत्सुखं भवेत्।
> न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
> स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

'जिसके चित्तका मल समाधिके द्वारा विगत हो चुका है, उस आत्मनिविष्टको जो सुख होता है, उसका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। वह तो केवल अन्तःकरण-द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है।' अथवा—

> 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति[४२]।'

(ब्रह्मरसको प्राप्त कर ही यह आत्मा आनन्दित होता है।) या श्वेताश्वतर उप० (४। १४) में कथित 'ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।' (ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर अत्यन्त शान्ति और कल्याणको प्राप्त करता है) की स्थितिका दर्शन है, जिसे गीतामें इस प्रकार कहा गया है:—

> युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
> शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥
> (६। १५)

'नियत मनवाला योगी सदैव अपनेको ब्रह्मके साथ युक्त करता हुआ मेरे परम स्थान, शान्ति और निर्वाणको प्राप्त करता है।'

इस प्रकार आरण्यकोंमें व्याहृतिका स्वरूप दार्शनिकताकी चरम सीमाका स्पर्श करता है। उपनिषदोंमें भी प्रायः इसी दृष्टिसे विवेचन किया गया है। तै० उप० में तो तै० आ० (७। ५। १। १—३) के कथनकी पुनरावृत्तिमात्र है।[४३] छा० उ० में तीन व्याहृतियोंको तीनों वेदोंसे निष्पन्न माना गया है, जो ऐ० ब्रा० (५। ३२) के विचारोंसे साम्य रखता है[४४]। मैत्रा० उप० में प्राण और आदित्यकी

---

३८. ऐ० आ० १। ३। २।

३९. 'ता वा एताः सर्वा ऋचः सर्वे वेदाः सर्वे घोषा एकैव व्याहृतिः, प्राण एव प्राण ऋच इत्येव विद्यात्।' (वही २। २। २)

४०. तै० आ० ७। ५। १। १—३।

४१. वही ७। ६। १। २।

४२. तै० उप० २। ६। १।

४३. तै० उ० १। ५। १; ३।

४४. छा० उ० ४। १७। ३।

उपासना करनेके लिये 'ओम्', व्याहृति और सावित्री मन्त्रको साधन बतलाया गया है[४५]। साथ ही 'ओम्' को ब्रह्मके अमूर्तरूप 'सत्य' एवं 'ज्योति'का ही रूप कहा गया है।[४६] जैमि० उप०में तीन महाव्याहृतियोंको प्रजापतिद्वारा अभिभूत तीन वेदों—ऋक्, यजु०, साम०—का क्रमशः रस माना गया है,[४७] साथ ही वाक्का तादात्म्य ब्रह्मसे मानते हुए उसे ही 'व्याहृतियाँ' और व्याहृतिको 'त्रयी विद्या' कहा गया है[४८]। इन्हीं त्रयी विद्याओंको निचोड़नेसे 'ओम्' अक्षरकी निष्पत्ति हुई[४९], जो अक्षर अक्षय ब्रह्मका स्वरूप है[५०]। इसकी तुलना मैत्रा० उप० के उस अंशसे कर सकते हैं, जहाँ 'ओम्' को ही 'पुण्य' और 'परम' कहा गया है, जिसके ज्ञानसे समस्त इच्छित फलोंकी प्राप्ति होती है।[५१]

प्राचीन उपनिषदोंमें चार व्याहृतिके अतिरिक्त अन्य किसीका स्पष्ट कथन नहीं किया गया। बादके छोटे उपनिषदोंमें नृसिंहपूर्वतापिनी उप० (नृ० पू० ता० उ०) और गायत्रीरहस्योपनिषद् (गा० र० उ०) में सप्त व्याहृतियोंका स्पष्ट निर्देश किया गया है। नृ० पू० ता० उ० में केवल व्याहृतिकी सात संख्याका ही कथन है,[५२] जब कि गा० र० उ० में उनके नामकरणसहित पूर्ण व्याख्या की गयी है। उसके अनुसार भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—सात व्याहृतियाँ हैं, जो क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, महर्लोक, जनलोक, तप और सत्यलोककी प्रतीक हैं।[५३] चतुर्वेदोपनिषद्का कथन है कि सृष्टिके पूर्व केवल एक नारायण थे, उन्हींके तपसे चतुर्मुख ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने चारों दिशाओं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिणमें अभिमुख होकर ध्यान किया, जिनसे क्रमशः भूः, भुवः, गायत्री छन्द, भूः, भुवः, त्रिष्टुभ् छन्द, यजु०; सुवः, जगती, साम० और जनः, अनुष्टुभ्छन्द, अथर्व० की उत्पत्ति हुई।[५४] निश्चय ही यह विचार-विकास अवान्तरकालीन है। जहाँतक व्याहृतिके मूलरूपका प्रश्न है, वे तीन ही—भूः, भुवः, स्वः हैं, जो तीनों लोकोंकी प्रतीक हैं; क्योंकि वेदाङ्गोंमें भी कहींपर भी तीनके अतिरिक्त किसी भी व्याहृतिका कथन नहीं किया गया है और इन्हीं तीनोंको महाव्याहृतिके नामसे अभिहित किया गया है।[५५] साथ ही वेदाङ्गोंने 'ओम्'के प्रयोगका भी इनके साथ विधान किया है[५६], यद्यपि उसके प्रयोगके स्थानपर विवाद भी रहे हैं।[५७] परंतु प्रायः व्याहृतिके पूर्व ही 'ओम्'का प्रयोग किया जाता है। वेदाङ्गोंमें व्याहृतिहोमका भी विधान मिलता है, जहाँ यह कहा गया है कि यदि कभी हवि ले जाते समय वह गिर पड़े या टूट जाय अथवा उल्टी हो जाय तो एक चम्मच घी लेकर आहवनीय अग्निमें 'भूर्भुवः स्वः'से हवन करना चाहिये।[५८] इस प्रकार यज्ञमें प्रयुक्त मन्त्रोंमें जो कमी या त्रुटि है अथवा जो अनिच्छित है उससे उत्पन्न दोषका हरण करती हैं, इसीलिये इन्हें 'व्याहृति' नाम दिया गया है।[५९] समस्त यज्ञ प्रणव (ओंकार) और व्याहृतिमें समाहित है, इसलिये इनके प्रयोगसे यज्ञको पूर्ण बनाना चाहिये।[६०]

४५. मैत्रा० उ० ६ । २ ।

४६. वही ६ । ३ ।

४७. जैमि० उ० १ । १ । १ । १—४ ।

४८. वही २ । ३ । ३ । ३; ९ । ६ । ७ ।

४९. वही १ । ७ । १ । ६-७ ।

५०. वही—१ । ७ । २ । १ ।

५१. मै. उ. ६ । ४ 'एतदेवाक्षरं पुण्यमेतदेवाक्षरं परम् ।
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

५२. नृ० पू० ता० उ० ३ । ४ ।

५३. गा० र. उ० १ ।

५४. चतुर्वेद उ. १ । १ ।

५५. कात्या० श्रौ० सू० २ । १ । ६; १९; ४ । १६; २५ । १ । ६; गोभिल १ । ८ । १५; २ । १० । ४; आश्व० श्रौ० सू० २, १४, २८; निरुक्त १३ । ९; पाणिनि अष्टाध्यायी ८ । २ । ७१।

५६. आश्व० गृ० सू० ३ । ४ । ८ ('ओंपूर्वा व्याहृतयः '); गोभिल सू० २ । १० । ४० ('महाव्याहृतीश्च विहृता ॐकारान्ताः')

५७. गोभिल सूत्रके व्याख्याकारोंमें भट्टनारायणोपाध्यायका मत है कि सभी व्याहृतियोंके पश्चात् ॐ का प्रयोग किया जाय—जैसे, भूः ॐ, भुवः ॐ, सुवः ॐ इत्यादि; किंतु भवदेवभट्टका मत इसके विपरीत है, अर्थात् ॐ भूः, ॐ भुवः आदि जैसा प्रयोग होना चाहिये, जब कि वीरेश्वरका मत इनके भी विपरीत है। उनके अनुसार ॐ भूः ॐ; ॐ भुवः ॐ आदि जैसा व्याहरण ही उचित है।

५८. कात्या० श्रौ० सू० २५ । १ । ६; आश्व० श्रौ० सू० २ । १४ । २८ (महाव्या० होमोऽनादेशे); गोभिल सू० १ । १ । ११ ।

५९. बौधायन श्रौ० सू० २७ । ३ । ४ (यहाँपर गो० ब्रा० १ । २ । ९ के 'व्याहृतिभिः यज्ञस्य विरिष्टं शमयति'—कथनकी तुलना की जा सकती है)।

६०. वही २७ । ३ । ४ ।

महाभारत और श्रीमद्भागवतपुराणमें भी व्याहृतिकी चर्चा की गयी है, किंतु नामनिर्देश नहीं किया गया। महाभारतमें इनकी संख्या पाँच कही गयी है[६१], जब कि भा० पु० में संख्याका स्पष्ट कथन न कर व्याहृतिको आन्वीक्षिकी, त्रयीवार्ता, दण्डनीति आदि विद्याओंके साथ रक्खा गया है[६२]। कूर्मपुराणमें भूः, भुवः, स्वः को सनातन महाव्याहृतियोंके नामसे अभिहित किया गया है, जो समस्त अशुभको दूर करनेवाली हैं तथा इनके साथ ही सत्त्व, रज और तमको व्याहृति कहा गया है, जो क्रमसे प्रधानपुरुष कालके तीन रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेशके प्रतीक हैं। ब्रह्मस्वरूप ओंकारके साथ इन व्याहृतियोंसहित सावित्री मन्त्र सभी मन्त्रों (तत्त्वों-) का सार कहा गया है।[६३]

स्मृतिकारोंमें याज्ञवल्क्यने सप्त व्याहृतियों—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्—की व्याख्या की है तथा इन्हें सात छन्दों और लोकोंसे सम्बन्धित किया है। इन सात लोकोंके पश्चात् (ऊपर) ब्रह्मका स्थान है, जिसकी प्राप्ति ज्ञान-कर्मकी निष्ठावाले सत्यभाषियोंको ही होती है, जिसे प्राप्तकर वे कभी नीचे नहीं आते अर्थात् जन्म-मरणसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।[६४]

इस प्रकार व्याहृतिके इस विशद विवेचनसे यह बात स्पष्ट प्रतिभासित होती है कि आर्य ऋषियोंने समस्त ब्रह्माण्डको विभिन्न विभागोंमें विभक्त मानकर सभीके ऊपर परम पुरुषको अधिष्ठित माना और उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करनेके लिये व्याहृतियोंको माध्यम बनाया। प्राण, वाक् आदि सभीमें उस परब्रह्मका रूप-दर्शन किया और अपनेको उस असीमितके साथ एकीकृत किया। जो सच्चा आर्य है, वह सीमित होते हुए भी तीनों लोकोंमें अपनेको व्याप्त देखता है और अपनी सीमित सत्ताको 'भूमा' या असीमके साथ इन व्याहृतियोंका ध्यानकर एकाकार करता है तथा आनन्दकी अनुभूति करता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मानव-जीवनका लक्ष्य

मानव-जीवनका है पावन एकमात्र यह लक्ष्य महान्।
सत्कर्मोंसे सदा पूजकर, 'पाना परम-अर्थ भगवान्'॥
इसे भूलकर, भोग-परायण हो, करता जो नित्य प्रमाद।
लक्ष्य-भ्रष्ट हो, करता वह निज भावी जीवनको बरबाद॥
व्यर्थ-अनर्थ क्रियाओंमें फँस करता नित्य नये वह पाप।
खोकर जीवन वह कुबुद्धि पड़ता नरकोंमें अपने-आप॥

६१. महाभा० ३। २१०। ३ (भाण्डारकर ओरि० इं० द्वारा सम्पादित).

६२. भा० पु० ३। १२। ४४।

६३. ॐकारमादितः कृत्वा व्याहृतिस्तदनन्तरम्। ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रश्रद्धयान्वितः॥
पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुवः स्वःसनातनाः। महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाशुभनिबर्हणाः॥
प्रधानपुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। सत्त्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद् व्याहृतयः स्मृताः॥
ॐकारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम्। एष मन्त्रो महाभाग सारात्सार उदाहृतः॥
(कूर्मपु०, उपविभाग, १३ अध्याय)

६४. भूराद्याश्चैव सप्तान्ता सप्तव्याहृतयस्तथा। लोकास्ता एव सप्तैते उपर्युपरि संस्थिताः॥
सप्तव्याहृतयः प्रोक्ताः पुरा यस्तु स्वयम्भुवा। ता एव सप्तच्छन्दांसि लोकाः सप्त प्रकीर्तिताः॥
(वाचस्पत्यं षष्ठो भागः, पृ० ४९८९ से उद्धृत)

मानसका स्वान्तःसुखाय

(लेखक—डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचनाका उद्देश्य 'स्वान्तःसुख' बताया है। यहाँ 'स्वान्तःसुख' मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार प्रभृति अन्तःकरणके अङ्गोंका सुख नहीं है, बल्कि अन्तरात्माका सुख है। 'स्व' अर्थात् आत्माका सुख ही सच्चा सुख है। इस 'स्व' का 'परस्व'से अतिघनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्पूर्ण जीवात्माओंकी अन्तरात्माका एक ही प्रतिनिधि शब्द है 'स्व'। यही कारण है कि 'स्वान्तःसुखाय' रचित रामचरितमानस अनन्तकोटि परान्तःसुखदायी सिद्ध हुआ। एक कदम और आगे बढ़कर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि रामचरितमानसमें अवगाहन करनेसे व्यष्टि 'स्व' का निजस्वरूपसे साक्षात्कार होता है, 'प्रान प्रान के जीवन जी के' की प्राप्ति होती है। तब 'स्व'का भाव संकुचित—एकदेशीय न होकर व्यापक तथा समष्टिगत हो जाता है।

अतः काव्यको सामाजिक जीवनके लिये उपयोगी कहनेवाले आलोचकोंकी आपत्तिका भी निवारण हो जाता है। इसे हम 'रस'के धरातलपर भी समझ सकते हैं। रसवादियोंने रस-सिद्धिके लिये साधारणीकरणको प्रथम शर्त स्वीकार किया है। 'रस' की आनन्दमयता उसका मूलाधार है। रस और आनन्द एक पत्रके उभय पृष्ठ-जैसे हैं। अतः आनन्द भी 'रस' माना गया है। आत्माको यह 'आनन्द रस'—निजानन्द रस अतिशय प्रिय है। 'रसो वै सः'। श्रीरघुनाथजी ही 'मानस'के साधकके रति-विषय हैं जो अन्तरात्माको सहज प्रिय हैं—'ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी।' अतः 'स्वान्तःसुखाय' केवल निज सुख न होकर साधारणीकृत हो जाता है। परंतु एक शर्त और है, वह यह कि 'मानस' तक आनेके अधिकारी वे ही हैं, जिन्हें रघुनाथजी प्रिय हैं। केवल आलोचनाका संबल लेकर 'मानस' तक आना अत्यन्त कठिन है। यदि कोई आ भी गया तो उसे 'काक' और 'बक' होकर ही लौटना पड़ेगा; 'काक होहिं पिक बकउ मराला'का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अब भक्ति-भक्तकी पारस्परिक मार्मिकतापर विचार करें। 'भक्ति' शब्द 'भज् सेवायाम्' धातुमें 'क्तिन्' प्रत्ययके योगसे बना है, जिसका अर्थ है—अपने उपास्य—अपने प्रियकी सेवा करना। आचार्य शुक्लजीने भक्तिके लिये दो तत्त्व—श्रद्धा और प्रेम स्वीकार किये हैं। गोस्वामीजीने बालकाण्डके प्रारम्भमें ही श्रीरघुनाथजीकी कृपा-प्राप्तिके लिये 'श्रद्धा-विश्वास' रूप भवानी-शंकरकी वन्दना की है। सम्पूर्ण सिद्धियोंके मूलमें विश्वास ही प्रधान है—'कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।' 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' रामकथा लिखनेवाले गोस्वामीजीने श्रीमद्भागवतसे भक्ति-माहात्म्य ग्रहण किया है। ऐसे तो रामचरितमानसका मूलाधार ग्रन्थ अध्यात्मरामायण है, जिससे रामकथाको ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया गया है; परंतु अध्यात्मरामायणमें ज्ञानकी ही सर्वत्र महिमा बतायी गयी है। अतः श्रीमद्भागवतके समर्थनमें गोस्वामीजीने ज्ञान और वैराग्यसे भक्तिको श्रेष्ठ बताया है। गोस्वामीजीकी भक्ति 'दास्य-भाव' की है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

नवधा भक्तिको उन्होंने अरण्यकाण्डमें बहुत ही मधुर ढंगसे स्पष्ट किया है। मर्यादावादी गोस्वामीजीने भक्तिके लिये 'प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती' कहा है। ऐसा इसलिये कि श्रद्धा, विनम्रता, शील, विवेक आदि सद्गुणोंको संबल बनाकर हम निरापदरूपसे भक्तिके राजमार्गपर चल सकते हैं और इसका पूर्ण अभ्यास होना परमावश्यक है। 'बिप्र चरन अति प्रीती'से ये बातें अभ्याससिद्ध हो जाती हैं। उत्तरकाण्डके काकभुशुण्डिकी साधनावाले प्रसंगको स्मरण करें। स्वयं शिवका नाम जपते हुए भी अहंकारवश 'गुरु-अपमान' करनेसे उन्हें शिवका कोपभाजन होना पड़ा। अतः गोस्वामीजीकी वैधी भक्ति मर्यादाके केन्द्रबिन्दुका वृत्त बनी हुई है। इसमें उपास्यके ऐश्वर्य-बोधकी स्मृति बराबर बनी रहती है। शाश्वत भक्त काकभुशुण्डिको मोह हो जानेपर उदरप्रदेशमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके दर्शन हुए। उनकी इस स्वानुभूतिने नाग-पाशका बन्धन काटनेवाले गरुडके लिये ओषधिका काम किया। परंतु रामके यहाँ प्रेमकी मर्यादा भी शीर्ष बिन्दुपर पहुँच जाती है। 'जटायुकी धूरि जटान सों झारी' और स्व-करकमलसे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करना, शबरीके आश्रमपर जाकर बेर खाना तथा निषादराजको गले

लगाना आदि इसके अच्छे उदाहरण हैं । प्रेमीजनोंके लिये तो 'प्रभु तरुतर कपि डार पर'की नित्य लीला चलती रहती है । अतः गोस्वामीजी कहते हैं—

रामहिं केवल प्रेम पिआरा । जानि लेहु जो जाननिहारा ॥

भक्ति मूलतः प्रीति है । यह भक्तके अंदर भगवान्‌के प्रति गुरुद्वारा जाग्रत् की जाती है । पृथक्-पृथक् दिखायी पड़नेपर भी 'भक्ति, भक्त, भगवन्त और गुरु' वस्तुतः एक ही हैं । जैसे, आँखें दर्पणमें अपने रूपको देखती हैं, तो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, दर्शक, अथवा कर्त्ता, कर्म, करण और सम्प्रदान सब एक ही रहते हैं, उसी प्रकार ये चारों भी एक ही हैं । उनमें भिन्नता नहीं है । जीवोंके कल्याणके लिये एक ही भगवान् इन चतुर्विभूतियों-के रूपमें दिखायी पड़ते हैं । इनमें भी भगवान् भक्तको अपनेसे भी अधिक बताते हैं—

मो तें संत अधिक कर लेखा ।

नवधा भक्ति गन्तव्य तक जानेके मानो नौ सोपान हैं । साधककी साधना 'सीयराममय सब जग जानी'में सिद्ध हो जाती है । ज्ञानी और भक्तमें अन्तर इतना ही है कि ज्ञानी जहाँ ब्रह्मैकात्म्यमें कृतकृत्य होता है, वहाँ भक्त सबको अपने ही उपास्यका स्वरूप समझकर नित्य आनन्दमग्न रहता है । इस आध्यात्मिक बोधका व्यावहारिक लाभ भी होता है ।

निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ।

श्रीमद्भगवद्गीता (७ । १६) के अनुसार ज्ञानी भी भक्त ही है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

गोस्वामीजी भी इसे स्वीकार करते हैं । भगवान्‌को ज्ञानी भक्त परमप्रिय होनेपर भी[1] गोस्वामीजीको दास्य-भावकी भक्ति अधिक प्रिय है; क्योंकि इसमें भक्त नित्य ही रक्षा-सुखका अनुभव करता है । गोस्वामीजीने ज्ञानीको 'प्रौढ़ पुत्र' तथा भक्तको 'बालक' कहा है । माता-पिताको सदा बालक पुत्रकी सुरक्षाकी चिन्ता बनी रहती है । पुनः साधनाकी निरापद सुगमताके दृष्टिकोणसे भी भक्ति ज्ञानसे एक कदम आगे बढ़ जाती है । गोस्वामीजीने ज्ञान और भक्तिके अन्तर-को उत्तरकाण्डमें बहुत ही सुन्दर रूपकके द्वारा स्पष्ट किया है । ज्ञानका घृतदीपक—

१—'ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ।'

'सोहमस्मि' की निष्कलुष लौकी सुरक्षा विषयरूपी प्रचण्ड प्रभञ्जनसे करनेमें समर्थ नहीं हो सकता । परंतु, जिसके हृदयमें भक्तिरूपी चिन्तामणिका प्रकाश जाज्वल्यमान है, उसको अतिशय प्रचण्ड प्रभञ्जनसे भी क्या डर ?[2] उसका विवेक तो सदा अविचल रहता है । रामभक्तको 'मैं दास हूँ' इससे बढ़कर दूसरा कोई विवेक ही नहीं है । तथा 'मैं दास हूँ' ऐसा निर्दोष अभिमान हृदयमें सदा बना रहे तो वह भक्त धन्य है ।[3]

गोस्वामीजीकी भक्ति अनन्यभावकी है । वे भक्तिको ऐहिक-पारलौकिक सुखभोगके साधनोंकी प्राप्तिका साधन बनाना नहीं चाहते । उन्हें यह वणिक्-वृत्ति प्रिय नहीं । इसीलिये वे सर्वदा-सर्वत्र अविरल, विशुद्धा अनन्यभावकी भक्ति चाहते हैं । रामका स्वरूप या रामका प्रिय पात्र समझकर जिस किसी भी देवता या मनुष्यकी वन्दना करते हैं, पर उनसे रामके चरणकमलोंकी अनन्य भक्तिका ही वरदान माँगते हैं । रामके किसी भी भक्तको वे इसी रूपमें देखना चाहते हैं । मानसका कोई भी भक्त भक्तिके अतिरिक्त किसी भी प्रकारकी अन्य कामना नहीं करता । तीर्थराज प्रयागसे वरदान माँगते हुए भरतजी कहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥

गोस्वामीजीको यह भी कामना नहीं कि मैं सदा उत्तम ही योनि प्राप्त कर रामकी भक्ति करूँ । वे तो कहते हैं कि 'जहाँ कहीं, जिस किसी भी योनिमें जन्म लूँ, वहाँ रामके चरणकमलोंमें मुझे भक्ति प्राप्त हो'—

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥

इसीलिये रामभक्तिसे रहित परम ज्ञानी भी उन्हें प्रिय नहीं लगते; क्योंकि ऐसे लोगोंको नित्य पतनका भय बना रहता है ।[4] माया नर्तकी उन्हें संसारके मञ्चपर नचाती है और लोग तमाशा देखते हैं । परंतु सब प्रकारसे गाढ़ी

२—राम भगति चिंतामनि सुंदर । बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ॥
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती ॥

३—अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

४—जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी ।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥

वृत्तियोंवाली माया जिसके इशारेपर सदा नृत्य करती रहती हैं[५], वह भक्तके लिये नित्य अनुकूल रहती है।[६]

गोस्वामीजीके लिये भगवान् राम ही सब कुछ हैं। वे सदा उन्हींके चरण-कमलोंकी छायामें नित्य विश्राम करना चाहते हैं[७]।

गोस्वामीजीने रामनाम-जपको परमावश्यक दर्शनसे भी अधिक बताया है; क्योंकि नित्य नाम-जापकको नित्य दर्शन होते हैं। सुग्रीवको तो दर्शन हुए थे, पर जाकर विषयमें फँस गये। अर्थात् राम-नाम सगुण-ब्रह्म रामसे भी बढ़कर है।

'मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते।'

क्योंकि राम-नाममें एक ही साथ अग्निकी दाहिका शक्ति (नाम-जापकके पापादि जलानेके कारण), सूर्य-की प्रकाश-शक्ति (भक्तके हृदयके अज्ञानान्धकारको दूर करनेके कारण) तथा चन्द्रमाकी पीयूषवर्षिणी शक्ति (शरणागत भक्तोंके त्रिविध तापोंको दूर करनेके कारण) के दर्शन होते हैं[८]। अतः गोस्वामीजीने नाम-महिमा-वर्णन-क्रममें इसकी विशेषताको बतानेमें स्वयं 'राम' को भी असमर्थ कहा है।[९] इसके साथ ही रामभक्तको रूप, गुण, लीला, धामकी भी साधना करनी चाहिये।

रामकी भक्तिके लिये सबको छूट है। उसमें जाति-कुलादिकी अपेक्षा नहीं। आवश्यकता है प्रेम-भावकी। राम एकमात्र भावके वशमें हैं—'भावबस्य भगवान सुख निधान करना भवन' अतः भक्तिमें मात्रा और परिमाणकी अपेक्षा नहीं। 'सुकृत प्रनाम किए अपनाएँ।' एक बार शरणमें आ जानेपर महापातकीको भी वे अपना लेते हैं। शरणागत होनेपर परम-पावन और परम-अपावनका भेद नहीं होता।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजहुँ नहिं ताहू॥

इस उद्घोषणासे भक्त सदा रक्षा-सुखका अनुभव करता है और तब उसे पापी होनेका भय नहीं, राम-भक्त होनेका मधुर अभिमान हो जाता है। किसकी हिम्मत, जो राम-भक्तके सामने आँख भी उठाकर देखे[१०]।

भक्तके यहाँ भावकी भी सीमा नहीं। जो जिस भावसे भक्ति करे, सब अनुकूल ही है। जनकपुरका धनुषयज्ञवाला प्रसंग इसका प्रमाण है—

'जाकी रही भावना जैसी···।' 'सेवक स्वामि सखा सिय पीके।'

इसमें भक्त-भगवान्-सम्बन्धका रहस्य गर्भत्व है। अतः जिसके लिये जो सम्बन्ध है, उसीके अनुकूल निष्कपट भाव ही भक्ति है—

'सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।'

परंतु मानसके भक्तका भाव मर्यादाका सीमोल्लङ्घन नहीं करता। केवटकी अवज्ञामें भी विनम्रताका रस टपकता है। रामभक्तिके लिये एक और आवश्यक शर्त है; वह यह कि अनुकूल तथा प्रतिकूल उभय स्थितियोंमें राममयताका दर्शन किया जाय। तब धनुषधारी-की भक्ति निरापद् रूपसे हो सकती है। साथ ही प्रेमकी अनन्यतामें प्रेमीके वज्रप्रहार करनेपर भी प्रेममें न्यूनता नहीं होनी चाहिये। ऐसे भक्तके सम्पूर्ण योगक्षेमका वहन भगवान् स्वयं करते हैं।

जो भक्त भगवान्के लिये अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करते, वे उन्हें परम प्रिय हैं। किष्किन्धाके सभी पात्र इसके उदाहरण हैं।

राम करुणा-वरुणालय हैं, अतः जिसके हृदयमें जितनी ही अधिक करुणा है, वह भक्त रामको उतना ही अधिक प्रिय है।

अनन्यताका एक अर्थ यह भी है कि भगवान्की इच्छा ही भक्तका जीवन है। उसकी अपनी स्वतन्त्र इच्छा नहीं। वह किसी भी सफलतामें अपने अहंकारको आगे नहीं करता; बल्कि उसे 'सो सब तव प्रताप रघुराई' की स्मृति सदा बनी रहनी चाहिये और गोस्वामीजीकी दृष्टिमें ब्रह्म-रामकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है—'राम-नाम'।

५—जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥ सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

६—तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥ ७—मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥

तथा—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे। काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पिआरे॥

× × × ×

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे॥ (बिनय-पत्रिका, पद-सं० १०१)

८—बंदउँ राम नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥ ९—कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

१०—है काके द्वै सीस ईसके जो हठि जनकी सीवँ चरै। तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरै॥

(विनय० १३७)

निर्विकारिताकी साधना

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

एक हम हैं कि लिया अपनी सूरत को भी बिगाड़,
एक वो हैं जिन्हें तस्वीर बना आती है।

प्रभुकी हमपर कितनी कृपा है कि उसने हमें दुनियाभरकी नियामतें बख्श रक्खी हैं। कैसा सुन्दर और स्वस्थ शरीर, कैसा सुन्दर घर-परिवार, कैसा सुन्दर संसार।

एक-एक नियामतपर विचार करिये, हृदय गद्गद हो जायगा। पर हम हैं कि इन नियामतोंको नियामत ही नहीं मानते।

हमें जो प्राप्त है, हमें जो उपलब्ध है—उसे हम कुछ मानते ही नहीं।

रोते हैं इस बातको लेकर कि हमें फलाँ चीज नहीं मिली या फलाँ चीज बहुत कम मिली!

नतीजा?

नतीजा यह होता है कि हमारी सारी नियामतें अपनी किस्मतको रोती रहती हैं।

हमारी जो बढ़िया सूरत है, जो बढ़िया तस्वीर है, वह बेचारी बिगड़ जाती है। हम जो कुछ कर सकते हैं, वह भी नहीं कर पाते।

× × ×

और दूसरी तरफ?

ऐसे भी लोग हैं जो अपनी सूरत तो बढ़िया बनाते ही हैं, दूसरोंकी भी ऐसी तस्वीर बना देते हैं कि देखनेवाले दाँतोंतले अँगुली दबाते हैं।

गांधीके लिये मशहूर था कि वह मिट्टीसे आदमी बना लेता था।

विनोबामें भी यह गुण है कि वे मुर्दोंमें प्राण फूँक देते हैं। नगण्य-से-नगण्य व्यक्तियोंको भी इतना फुला देते हैं कि वे असम्भव-जैसे दीखनेवाले काम आनन-फानन कर डालते हैं।

× × ×

आखिर इस जादूका रहस्य क्या है?

गांधी हो या विनोबा, बुद्ध हो या महावीर, ईसा हो या मुहम्मद—इन सबमें मिट्टीको सोना बनानेकी जो कीमियाँ विकसित हुई, उसके मूलमें एक ही बात है—साधना।

सामान्य मानवीय विकारोंसे ऊपर उठनेकी साधना।

निर्विकारिताकी साधना।

× × ×

दीनबन्धु एण्ड्रूजकी मेजपर एक वाक्य लिखा पड़ा रहता था—

'मैंने अधिक क्या किया?'

'मतलब?'

पत्थरका जवाब पत्थरसे सभी दे लेते हैं। मैंने भी यदि पत्थरका जवाब पत्थरसे दिया तो मैंने अधिक क्या किया?

तारीफ तो मेरी इसमें है कि मैं कड़वी बातका जवाब मीठी बातसे दूँ। बुराईका जवाब भलाईसे दूँ। घृणाका जवाब प्रेमसे दूँ। विषका जवाब अमृतसे दूँ।

× × ×

आपको गुस्सा आता है। मैं भी गुस्सेमें बुत हो जाऊँ तो मैंने अधिक क्या किया?

आपको लोभ सता रहा है। मैं भी लोभमें आपसे पीछे न रहूँ, तो मैंने अधिक क्या किया?

सभी लोग विकारग्रस्त रहते हैं। कामनाओं और वासनाओंके जलभँवरमें डूबते-उतराते रहते हैं। मैं भी यदि उन्हींकी तरह विकारग्रस्त बना रहा तो मुझमें दूसरोंसे फर्क क्या रहा? मैंने अधिक क्या किया?

जैसे नागनाथ, तैसे साँपनाथ

कोई हजार गालियाँ दे रहा है, मैंने एक ही दी। तो मुझमें और उसमें फर्क क्या रहा? गाली तो गाली। जैसी एक, वैसी हजार।

× × ×

सच तो यह है कि ऊपर उठना है तो हमें अपने आपको विकारोंसे ऊपर उठाना पड़ेगा।

और यह कोई मामूली बात है?

दाल-भातका कौर है निर्विकारिताकी साधना?

जी नहीं। इसमें तिल-तिलकर तपना पड़ेगा!

प्रतिक्षण, प्रतिपल सावधान और सजग रहना पड़ेगा। अपने सारे जीवन-क्रममें अपने लक्ष्यके अनुकूल परिवर्तन

करना पड़ेगा। रहन-सहन, भोजन-वस्त्र, खान-पान, निद्रा, मित्रमण्डली आदि हर चीजपर उसका असर पड़ेगा। सभी जगह फूँक-फूँककर कदम रखना पड़ेगा।

कहींसे, किसी भी द्वारसे विकार हमारे भीतर प्रवेश न कर पाये—इस बातकी आठ पहर चौंसठ घड़ी सावधानी बरतनी होगी।

हर साधकके जीवनमें हमें इस प्रक्रियाके उदाहरण मिलते हैं। फिर वह बुद्ध हो चाहे महावीर, रामकृष्ण परमहंस हो चाहे रामतीर्थ, ईसा हो चाहे मुहम्मद, गांधी हो चाहे विनोबा। सावधानीके बिना, लगनके बिना, तड़पके बिना, सातत्यके बिना, साधनाके मार्गपर अग्रसर हुआ ही नहीं जा सकता।

× × ×

गौतम बुद्ध जब प्रव्रज्या लेकर बाहर निकले, पहली बार उन्होंने भिक्षा ली तो भीखके वे रूखे-सूखे टुकड़े उनके गलेसे नीचे उतर ही नहीं पा रहे थे।

कहाँ तरह-तरहके व्यञ्जनों और पकवानोंमें रात-दिन डूबा रहनेवाला राजकुमार और कहाँ मोटी-झोटी मधुकरी! गौतम सोचने लगे—'नहीं। मुझे इसी मधुकरीपर निर्वाह करना है—

मीठा और सलोना क्या रे!

गौतमने उसे गलेके नीचे उतारा ही।

× × ×

गांधीकी साधनाके दो नमूने लीजिये।

उन दिनों वे दक्षिणी अफ्रीकामें थे।

केप्टाउनसे उन्होंने अपने एक आत्मीयको लिखा—

"एक बार बा (कस्तूरबा) को अदरक खानेकी इच्छा हुई। मुझको भी अदरकका निषेध न था। अतएव उसके साथ मैं भी यह देखनेके लिये कि अदरकमें क्या गुण है, खाने लगा।

'बा' को ऐसी-ऐसी चीजें खानेका बड़ा शौक है। वह अदरककी जड़ें निकाल लायी। मेरा भी मन चला, यहाँ-तक कि छोटी-छोटी चार-पाँच कोमल जड़ें मैं चबाने लगा।

एक दिन 'बा'ने गुलबाईकी टोकरीसे बहुत-सी जड़ें लेकर एक कोठरीमें रख दीं। यह देखकर मुझे बड़ा अचम्भा मालूम हुआ। इसके बाद एक रात व्यतीत हुई। सुबह अचानक मेरे मनमें आया—'अदरक कैसे खायें? अदरककी एक गाँठकी एक पोरमें अनेक जड़ें पैदा होती हैं। इसलिये उसमें बहुत-से जीव-जन्तु होने चाहिये। इसके सिवा कोमल जड़ खाना मानो कोमल बालककी हत्या करनेके समान है।'

मुझे अपने विषयमें अत्यन्त तिरस्कार उत्पन्न हुआ। इस जन्ममें अदरक न खानेका निश्चय किया।

इतना ही नहीं,—अभी मजेकी बात तो आगे ही है। 'बा' ने देखा कि मैं अदरक नहीं खाता। उसने कारण पूछा। मैंने समझाकर बतला दिया। उसकी भी समझमें आ गया। उसने अधिक कोमल जड़ें लौटा लीं और शेषमेंसे खानेका मुझे आग्रह किया। मैंने इन्कार कर दिया।

व्रत अभी भी है। परंतु जीभ और आँखोंका हाल बिल्कुल कुत्तोंका-सा है। जहाँ नजर पड़ी कि अदरक खानेकी इच्छा होती है, मुँहमें पानी भर आता है; परंतु जूठनपर नजर पड़नेपर भी जिस प्रकार चटोरे कुत्ते, मालिकके देखते हुए, जूठन खानेका साहस नहीं करते, उसी प्रकार 'आत्मारामजी' के देखते हुए जिह्वा उस अदरकको नहीं छूती। अदरक दिनभर मेरी नजरके आगे रहता है; क्योंकि जहाँ मेरे कागज-पत्र पड़े हैं, वहीं वह भी रक्खा है। इस समय मेरी ऐसी दशा हो रही है कि कुछ पूछिये ही नहीं। शक्कर और नमक छोड़नेमें मुझे जितना कष्ट नहीं हुआ, उतना कष्ट मुझे इस अदरकसे मन हटानेमें पड़ रहा है।"

× × ×

गांधीजीने 'एक पुण्यस्मरण और प्रायश्चित्त' के नामसे १८९८ की एक घटनाका अपनी 'आत्मकथा'में इस प्रकार उल्लेख किया है—

"जब मैं डरबनमें वकालत करता था, तब अकसर मेरे मुहर्रिर मेरे साथ रहते थे। उनमें हिंदू और ईसाई थे। मैं उन्हें अपना कुटुम्बी मानता था। एक मुहर्रिर ईसाई था। उसके माता-पिता पंचम जातिके थे। हमारे कमरोंमें मोरियाँ नहीं थीं। हर कमरेमें मोरीकी जगह पेशाबके लिये खास बरतन रक्खा जाता था। उसे उठानेका काम नौकरका न था, बल्कि हम पति-पत्नीका था। जो मुहर्रिर अपनेको घरका-सा मानने लगते, वे तो अपना बरतन

खुद उठाते भी थे। यह पंचम कुलमें उत्पन्न मुहर्रिर नया था। उसका बरतन हमें ही उठाना चाहिये था। कस्तूरबाई दूसरे बर्तन तो उठाती थी, पर इस बर्तनको उठाना उसे असह्य लगा। इससे हमारे बीच कलह हुआ। मेरा उठाना उससे सहा न जाता था और खुद उठाना उसे भारी हो गया था।

आँखोंसे मोतीकी बूँदें टपकाती, हाथमें बरतन उठाती और अपनी लाल आँखोंसे मुझे उलाहना देकर सीढ़ियाँ उतरती हुई कस्तूरबाईका चित्र मैं आज भी खींच सकता हूँ।

पर मैं तो जितना प्रेमी, उतना ही क्रूर पति था। मैं अपनेको उसका शिक्षक भी मानता था, इस कारण अपने अंधे प्रेमके वश होकर उसे खूब सताता था।

यों उसके सिर्फ बर्तन उठाकर ले जानेसे मुझे संतोष न हुआ। मुझे संतोष तभी होता, जब वह उसे हँसते मुँह ले जाती। इसलिये मैंने दो बातें ऊँची आवाजमें कहीं। मैं बड़बड़ा उठा—

'यह कलह मेरे घरमें नहीं चलेगा।'

यह वचन कस्तूरबाईको तीरकी तरह चुभ गया।

वह भड़क उठी, 'तो अपना घर अपने पास रक्खो। मैं यह चली।' मैं उस समय भगवान्‌को भूल बैठा था। मुझमें दयाका लेश भी नहीं रह गया था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ियोंके सामने ही बाहर निकलनेका दर्वाजा था। मैं उस असहाय अबलाको पकड़कर दरवाजे तक खींच ले गया। दरवाजा आधा खोला। कस्तूरबाईकी आँखोंसे गंगा-जमुना बह रही थी। वह बोली—

'तुम्हें तो शरम नहीं है, लेकिन मुझे है। जरा तो शरमाओ। मैं बाहर निकलकर कहाँ जा सकती हूँ? यहाँ मेरे माँ-बाप नहीं हैं कि उनके घर चली जाऊँ। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, इसलिये मुझे तुम्हारी डाँट-फटकार सहनी ही होगी। अब शरमाओ और दरवाजा बंद करो। कोई देखेगा तो दोमेंसे एककी भी शोभा नहीं रहेगी।'

मैंने मुँह तो लाल रक्खा, पर शर्मिंदा जरूर हुआ। दर्वाजा बंद कर दिया। यदि पत्नी मुझे छोड़ नहीं सकती थी, तो मैं भी उसे छोड़कर कहाँ जा सकता था? हमारे बीच झगड़े तो बहुत हुए हैं, पर परिणाम सदा शुभ ही रहा है। पत्नीने अपनी अद्भुत सहनशक्तिद्वारा विजय प्राप्त की है।

मैं यह वर्णन आज तटस्थभावसे कर सकता हूँ; क्योंकि यह घटना हमारे बीते युगकी है। आज मैं मोहान्ध पति नहीं हूँ। शिक्षक नहीं हूँ। कस्तूरबा चाहे तो मुझे आज धमका सकती है। आज हम परखे हुए मित्र हैं, एक दूसरेके प्रति निर्विकार बनकर रहते हैं।

ऊपरकी घटना सन् १८९८ की है। उस समय मैं ब्रह्मचर्यपालनके विषयमें कुछ भी नहीं जानता था। यह वह समय था, जब मुझे इसका स्पष्ट भान न था कि पत्नी केवल सहधर्मिणी, सहचारिणी और सुख-दुःखकी साथिन है। मैं उन दिनों यह मानकर चलता था कि पत्नी विषयभोगका भाजन है और पतिकी कैसी भी आज्ञा क्यों न हो, उसका पालन करनेके लिये वह सिरजी गयी है।

सन् १९००से मेरे विचारोंमें गम्भीर परिवर्तन हुआ, उसकी परिणति सन् १९०६ में हुई। यहाँ तो इतना कहना काफी है कि 'जैसे-जैसे मैं निर्विकार बनता गया, वैसे-वैसे मेरी गृहस्थी शान्त, निर्मल और सुखी होती गयी है और आज भी होती जा रही है।''

× × ×

मनुष्यको समाजमें रहना पड़ता है। घर-परिवार, पास-पड़ोस, हितू-मित्र, सगे-सम्बन्धी सबके साथ उसका सम्पर्क आता है। इसके अलावा दफ्तर, क्लब, खेल-कूद, उत्सव, शोक आदिमें अनेक परिचितों, अपरिचितोंसे उसका सम्बन्ध आता है। वह कपड़े रँगा ले, संन्यास ले ले, फिर भी, मधुकरीके लिये ही सही, उसका समाजसे सम्पर्क आता ही है।

सम्भव है कि एकान्तमें विकार शान्त रहें, व्यथित न करें, पर जहाँ समाजके साथ सम्पर्क आया कि उनकी रेलपेल मचती है।

फिर तो कभी कोई विकार सताता है, कभी कोई।

तो जरूरत है इन विकारोंको शान्त करनेकी। विकारोंपर नियन्त्रण करनेकी।

इसके लिये निर्विकारिताकी साधना चाहिये।

× × ×

मानव तटस्थ होकर जब देखता है, तब उसे पता

चलता है कि कब, कहाँ, कौन विकार किस रूपमें उसे व्यथित कर रहा है।

विकारका दर्शन कर लेना विकारको जीतनेकी पहली प्रक्रिया है।

दूसरी प्रक्रिया है, उसके बहावमें न बहना। अपने-आपपर उसे किसी भी प्रकार हावी न होने देना।

यहाँ सवाल आता है कि विषयोंमें रची-पची इन्द्रियोंको भोग भोगनेकी आदत पड़ी हुई है। वे यदि तीव्र गतिसे विषयोंकी ओर दौड़ती हैं तो हम क्या करें?

बापूसे—महात्मा गांधीसे किसीने ऐसा ही एक प्रश्न किया था। केप्टाउनसे उसका उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था—

"यदि चित्त पवित्र हो तो विकारेन्द्रियके विकृत होनेका कोई कारण ही नहीं। पर चित्त है क्या चीज? यह कैसे जाना जाय कि वह पवित्र है? चित्त ही आत्मा अथवा आत्माका स्थान है। उसमें पवित्रताका अनुभव करना ही आत्मज्ञान होना है और ज्ञानका अस्तित्व होनेपर इन्द्रिय-विकार हो ही नहीं सकता।

हृदयकी पूर्ण पवित्रता अन्तिम स्थिति है। पवित्रता जितनी अधिक होगी, उतने ही विकार अधिक शान्त होंगे। विकार कोई इन्द्रियगत विषय नहीं है। **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'** इन्द्रियाँ तो केवल मनोविकार व्यक्त होनेके साधनमात्र हैं। उनसे हम मनोविकार पहचानते हैं।"

सारांश यह है कि इन्द्रियोंका नाश करनेसे मनोविकार नष्ट नहीं हो सकते। हिजड़े भी विकारमय पाये जाते हैं। जन्मतः नपुंसक मनुष्योंमें भी इतने विकार होते हैं कि उनमेंसे बहुतेरे अकर्तव्य करते हुए दिखायी पड़ते हैं। मेरी गन्ध-शक्ति मन्द है, फिर भी सुवास लेनेकी इच्छा होती ही है। जब कोई गुलाब आदिकी सुगन्धका वर्णन करता है, तब मेरा मन भी भ्रमरकी भाँति उधर दौड़ता है और जबर्दस्ती उसे फिर स्थिर करना पड़ता है।

जब मनपर काबू नहीं होता, पर विकारशक्ति तीव्र होती है, तब कई लोग इन्द्रिय छेद डालते हैं। ऐसे मनुष्यों-की कई आख्यायिकाएँ सुनी गयी हैं। वैसी दशामें वैसा करनेकी आवश्यकता भी हो सकती है।

मान लो, मेरा मन चञ्चल हो उठा और किसी भगिनी-पर कुदृष्टि पड़ी। मुझे काम सता रहा है, पर बिल्कुल अंधा नहीं बन गया हूँ। अब ऐसे समयमें यदि कोई दूसरा उपाय सुझायी न पड़े तो मेरी रायमें इन्द्रिय-छेदन करना ही एक पवित्र कार्य है। क्रमशः शुद्ध होनेवालेको ऐसा मौका नहीं आता। जिसको तीव्र वैराग्य प्राप्त हो गया है परंतु पिछला आचरण पवित्र नहीं, उसके लिये अवश्य ऐसा मौका आनेकी सम्भावना रहती है।

यदि कोई कहे कि भाई, हमको ऐसा तात्कालिक उपाय बताओ कि विकारोत्पत्ति ही न हो और इन्द्रिय चलायमान न हो, तो उसका कथन बन्ध्याके पुत्र चाहनेके समान होगा। यह कार्य अधिक समय चाहता है। जिस प्रकार जादूका आम सिर्फ देखनेभरको होता है, उसी प्रकार क्षणिक मनःशुद्धिसे कोई लाभ नहीं होता।

एकान्त-सेवन, सत्संग, शोधन, सत्कीर्तन, सद्वाचन, निरन्तर शरीर-दमन, अल्पाहार, फलाहार, अल्पनिद्रा, भोग-विलासका त्याग आदि बातें जो करेगा, उसके मनका राज्य हस्तामलक हो जायगा। मनुष्यको इतना तो अवश्य ही करना चाहिये।

× × ×

विकारोंके आक्रमणका सामना करनेका एक कारगर उपाय है—विरोधी सद्गुणोंका अभ्यास।

हममें जिस सद्गुणकी कमी हो, उसके विकासका हमें जी-जानसे प्रयत्न करना चाहिये। क्रोध आता है तो क्षमा-गुणके विकासका हमें अभ्यास करना चाहिये। घृणा और द्वेषकी आदत है तो स्नेह और प्रेम-गुणका विकास करना चाहिये। लोभ सताता है तो उदारता और त्याग-गुणका विकास करना चाहिये—

अभ्यासेन तु कौन्तेय!

अभ्याससे क्या नहीं होता?

निर्विकारिताकी साधनामें गुण-विकासकी इस पद्धतिसे निश्चय ही सफलता मिल सकती है।

× × ×

आप पूछेंगे कि किसीने ऐसा किया भी है?

जी हाँ, दुनियादारीका एक उदाहरण लीजिये।

अमेरिकन लेखक नैपोलियन हिल अपनी पुस्तक 'ला ऑफ सक्सेस' (सफलताके नियम) में लिखता है—

"मेरा एक अभिन्न मित्र है। प्रसिद्ध लेखक, प्रसिद्ध वक्ता। कोई दस साल पहले उसने महसूस किया कि उसमें कुछ गुणोंकी कमी है, तो उसने एक कार्यक्रम बनाया और उसपर अमल करना शुरू कर दिया।

रोज रातको सोनेसे पहले वह अपनी आँखें बंद कर लेता और अपने कल्पना-लोकमें वह प्रवेश करता।

वह देखता कि उसके सामने एक बड़ी-सी मेज है, जिसपर उसकी पाँच आदर्शमूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

लिंकन, वाशिंगटन, एमर्सन, नेपोलियन और एलबर्ट हुबार्ड।

अपनी कल्पनामें लिंकनसे वह कहता—'आपमें अद्भुत सहनशीलता थी, मानवमात्रके प्रति आपमें उदारता थी और आपमें रसिकताकी भावना भी थी। मैं अपने भीतर आपके इन सद्गुणोंका विकास करना चाहता हूँ। जबतक आपकी तरह मैं इन सद्गुणोंको आत्मसात् नहीं कर लूँगा, तबतक मैं चुप नहीं बैठूँगा।'

वाशिंगटनसे वह कहता—'आपमें देशभक्ति, आत्मत्याग और नेतृत्वके जो अद्भुत गुण थे, उनका मैं अपने भीतर विकास करना चाहता हूँ।'

एमर्सनसे वह कहता—'आप जेलोंकी चहारदीवारियोंमें, उगते और पनपते वृक्षोंमें, बहते हुए झरनोंमें, खिलते हुए पुष्पोंमें और बच्चोंके उज्ज्वल मुखड़ोंमें प्रकृतिके जिस सौन्दर्यके दर्शन करते थे, आपकी उस दिव्य दृष्टिका मैं अपने भीतर विकास करना चाहता हूँ।'

नेपोलियनसे वह कहता—'आपमें अद्भुत आत्मविश्वास था, कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करनेकी अकूत क्षमता थी, भूलोंसे आप लाभ उठाते थे और पराजयमेंसे भी शक्तिका विकास करते थे। आपके इन गुणोंका मैं अपने भीतर विकास करना चाहता हूँ।'

हुबार्डसे वह कहता—'आप जिस स्पष्टरूपसे नपे-तुले और जोरदार शब्दोंमें अपने भावोंको व्यक्त करते थे, वैसी और उससे भी अधिक योग्यतासे मैं अपने भावोंको व्यक्त कर सकूँ—यह मेरी आकाङ्क्षा है।'

कई महीनोंतक हमारा यह मित्र रोज रातको इस प्रकार अपने आदर्श पुरुषोंके साथ कल्पना-वार्ता करता रहा, करता रहा। अन्तमें एक दिन हमने देखा कि उसके व्यक्तित्वमें इन पाँचों महापुरुषोंके ये अद्भुत गुण भारी मात्रामें विकसित हो गये हैं।

योगशास्त्रमें 'वीतराग' पुरुषपर, उसके गुणोंपर ध्यान करनेकी पद्धति इसीलिये तो बतायी गयी है।

× × ×

सद्गुणोंमें, निर्विकारितामें जिन्हें हम आदर्श मानते हैं, उनकी कल्पनामूर्ति अपने समक्ष खड़ी करके भी हम निर्विकारिताकी साधना कर सकते हैं और जिस व्यक्तिने निर्विकारिताकी साधना की है, उसमें सिद्धि प्राप्त की है, वह कैसा होता है?

विवेकानन्दने श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवकी चर्चा करते हुए उसकी तस्वीर खड़ी की है। आइये, हम भी उसके दर्शन करके उन चरणचिह्नोंपर चलनेका संकल्प लें—

'अपने गुरुदेवको देखकर मैंने जाना कि मनुष्य पूर्ण हो सकता है—इस मानवशरीरमें ही। उन होठोंसे कभी भी किसीके लिये भी गाली न निकली और न उन्होंने कभी किसीकी आलोचना ही की। वे आँखें बुराई देखनेकी सम्भावनासे परे थीं। उस मस्तिष्कने बुरा सोचनेकी शक्ति ही खो दी थी। वे गुण और अच्छाई छोड़कर कुछ देखते ही नहीं थे। यही है उस अपार पवित्रता और अपार त्यागका एकमात्र रहस्य।'

× × ×

निर्विकारिताका अन्तिम संबल हैं—परम प्रभु।

परम प्रभुमें सारे गुण हैं। गुणोंका भण्डार हैं वे दयामय। क्यों न हम उनसे रोज प्रार्थना करें कि—

'प्रभो! हममें जिन सद्गुणोंकी कमी है, तू हममें उन सद्गुणोंका विकास कर।

हममें सत्यकी कमी है, तू हममें सत्यका विकास कर।
हममें प्रेमकी कमी है, तू हममें प्रेमका विकास कर।
हममें करुणाकी कमी है, तू हममें करुणाका विकास कर।
हममें क्षमाकी कमी है, तू हममें क्षमाका विकास कर।'

रूसी महिलाकी राधा-कृष्णके प्रति भक्ति

(लेखक—श्रीविश्वम्भरसहायजी प्रेमी)

सोवियत रूसमें इस समय भारतके साहित्यका गहन अध्ययन चल रहा है। रूसी विद्वानोंने हिंदी भाषा सीखकर अनेक पुस्तकोंका अनुवाद भी किया है। पिछले दिनों रूसी विद्वान् चेलीशेव मेरठके हिंदी-भवनके एक विशेष समारोहमें सम्मिलित हुए थे। उन्होंने उस समय बताया था कि वहाँ किस प्रकार हिंदी ग्रन्थोंपर शोध-कार्य किया जा रहा है। श्रीचेलीशेवने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि हम धीरे-धीरे भारतके प्राचीन ग्रन्थोंका अनुवाद भी प्रारम्भ करेंगे।

वहाँकी एक महिला कुछ महीनों पूर्व हिंदी-भवन, मेरठमें आयी थीं। इनका नाम सजानोवा वातालोवा मिखाइलोवना है; परंतु मुख्यरूपसे इन्हें सजानोवा नामसे ही पुकारा जा रहा है। इन्होंने महाकवि सूरदासके सूरसागरका रूसी भाषामें अनुवाद करना प्रारम्भ किया है। ये भारतमें कुछ दिनके लिये सूरसागरका अध्ययन करने आयी थीं। इस कार्यमें आगरा-विश्वविद्यालयकी ओरसे इनको समुचित सुविधाएँ प्रदान की गयी थीं।

इनके बारेमें यह बात उल्लेखनीय है कि ये जहाँ सूरदासके प्रति भक्ति-भावना रखती हैं, वहाँ इन्हें राधा और कृष्णसे भी अगाध प्रेम है। हिंदीके एक प्रमुख पत्रकारने तो दिल्लीमें इनको रूसी राधा नामसे सम्बोधित किया था। सजानोवा भगवान् कृष्णके समान राधाको भी धार्मिक दृष्टिसे पूजनीय मानती हैं। इनका कहना है—मेरे हृदयमें इन दोनोंके प्रति समान भक्ति है।

सजानोवा सूरदास-सम्बन्धी साहित्यको अपने देश ले जानेमें बड़ी रुचि रखती हैं। उन्होंने हिंदी-भवनकी उन सभी पुस्तकोंको देखनेमें रुचि ली, जो महाकवि सूर और उनके काव्यसे सम्बन्ध रखती हैं। इनके बारेमें यहाँ एक बातका उल्लेख कर देना भी मैं आवश्यक समझता हूँ कि इन्होंने हिंदी-भवनमें लगे सभी चित्रोंको बड़े ध्यानसे देखा। भवनमें महाकवि तुलसीका एक सुन्दर रंगीन चित्र भी लगा हुआ था। उसे देखकर सजानोवाने तत्काल प्रश्न किया—'यहाँ महाकवि सूरदासका चित्र क्यों नहीं लगा?' उनके इस प्रश्नका उत्तर तो कोई था नहीं—उनसे यही कहा गया कि 'अब शीघ्र यहाँ चित्र लगवा दिया जायगा।' इसी प्रसंगमें उन्होंने यह भी कहा कि 'आपके सूरदास तो इतने महान् कवि हैं, जिनकी स्मृतिमें राजधानी दिल्लीमें उनके नामपर सड़क होनी चाहिये थी और उसपर उनकी मूर्ति भी लगी होती।'

सजानोवा अभी कुछ दिनों पूर्व मेरे मित्र डा० सिद्धेश्वरनाथ श्रीवास्तवके साथ सूरदासकी साधना-स्थली रुनुकता भी गयी थीं। मुझे बताया गया कि उस दिन रात्रिभर वहाँ कीर्तन होता रहा, जिसमें सजानोवाने बड़ी दिलचस्पी ली। सूरके पदोंका गायन उन्हें बड़ा प्रिय लगा।

सूरके पदोंका मर्म समझनेके लिये उन्हें बताया गया कि वे श्रीकृष्ण भगवान्‌के जीवन-चरित्रको गहराईके साथ पढ़ें; क्योंकि तभी वे उनके बाल-जीवनकी उन लीलाओंका रहस्य समझ पायेंगी, जिनका वर्णन महाकवि सूरने अपने पदोंमें किया है। इसके अतिरिक्त उनसे महाभारतकी कथाको भी विस्तारपूर्वक पढ़नेके लिये अनुरोध किया गया, जिससे वे गीताके रहस्यको समझ सकें।

सजानोवाने पिछले महीनों आगराके साहित्यकारोंकी एक गोष्ठीमें भी भाग लिया था। उसमें उन्होंने सूरके प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते हुए उनके काव्यकी बड़ी सराहना की थी। उसमें उन्होंने यह भी प्रकट किया था कि 'वे अपने देशवासियोंके बीच पहुँचकर सूरकी भक्तिपर अपने विचार प्रकट करेंगी।'

मेरी दृष्टिमें सजानोवाका यह कार्य सराहनीय है। मुझे विश्वास है कि वे सूरसागरका रूसी अनुवाद करनेमें सफल होंगी और साथ ही उनके हृदयमें कृष्ण और राधाके प्रति भी प्रेम उत्पन्न होगा।

कामके पत्र

(१)

प्रेमका स्वरूप

प्रिय—सप्रेम हरिस्मरण ! तुम्हारा पत्र मिला। प्रेम जब वास्तविक रूपमें आत्मप्रकाश करता है, तब वह जीवनमें सब ओर छा जाता है। देवर्षि नारद कहते हैं—**'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति, तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति।'** 'वह प्रेम ही देखता है, प्रेम ही सुनता है, प्रेम ही बोलता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है।' उसकी इन्द्रियाँ तथा उसके मनकी सारी वृत्तियाँ प्रेमरूपा बन जाती हैं। इस अवस्थामें भोगको स्थान ही कहाँ है ? प्रेमास्पदके प्रेमके अतिरिक्त जगत्में कुछ रह ही नहीं जाता। यह स्थिति अत्यन्त विचित्र होती है, उसका कोई वर्णन नहीं हो सकता—**'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।'** 'प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है।' पर इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वह पागल हो जाता है। पागलकी तो वृत्तियाँ विकृत होती हैं; पर यहाँ तो वृत्ति केवल परम पवित्र प्रेमाकारमें परिणत रहती है। महाप्रभु श्रीचैतन्यकी इसी वृत्तिके कीर्तनमें उनकी कीर्तनध्वनि सुनकर बड़े-बड़े तार्किक, नैयायिक पण्डित बलात् प्रेमाकर्षित होकर बाह्यज्ञानविस्मृत हो नाच उठते थे। यह प्रेमोन्माद त्रिभुवनको पावन करनेवाला है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। २४)

'प्रेमसे जिसकी वाणी गद्गद हो जाती है, चित्त द्रवित हो जाता है, वह कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी लाज छोड़कर गाता-नाचता है, ऐसा वह मुझमें प्रेमभक्तियुक्त भक्त भुवनको पवित्र करता है।'

जबतक ऐसा न हो, तबतक बार-बार मनको तथा इन्द्रियोंको हर उपायसे भगवान्के प्रेममें लगाते रहना चाहिये। भोगोंमें अरुचि तथा भजनमें रुचि पैदा हो, इन्द्रियोंको तथा मनको सदा ऐसे ही सङ्गमें रखना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवत्प्रेममें भोगकामनाको ही स्थान नहीं है, भोगकी बात ही नहीं। सदैव सावधान रहो और लगे रहो। शेष भगवत्कृपा। तुम्हारा—

(२)

पूर्णसमर्पणमें कमी

प्रिय—सप्रेम हरिस्मरण ! तुम्हारे कई पत्र मिले। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख पाया। तुमने लिखा सो तो ठीक है, पर बात ऐसी है कि तुम अपना पूर्णसमर्पण मानते हो, मानना भी चाहिये। मानते-मानते ही होता है, पर तुम्हारे मनमें अपने लिये जो बार-बार चिन्ता होती है, मनमें उद्विग्नता तथा निराशा-सी आती है, मनमें भय होता है, दूसरे-दूसरे उपाय सोचे जाते हैं, इसका अर्थ ही है कि तुम पूर्णतया निर्भर नहीं हो। इसीसे चिन्ता, उद्वेग, भय आदि होते हैं। पूर्णसमर्पणमें सहज पूर्ण निर्भरता होती है। पूर्णरूपसे निश्चिन्तता और निर्भयता आ जाती है। वास्तवमें विश्वास-की कमीसे ही पूर्णसमर्पण नहीं होता।

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहउ कहाँ बिसवासा॥

मानसके ये शब्द याद रखने योग्य हैं। विश्वास होनेपर किसी भी परिस्थितिमें किसी प्रकारका भी उद्वेग या क्षोभ नहीं होता। न भविष्यकी चिन्ता होती है, न स्खलन होता है। विश्वासीका समर्पणमय जीवन सदा-सर्वदा सहज ही प्रभुके अनुकूल चेष्टा करता हुआ प्रभुकी स्मृतिमय बना रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह विवेकशून्य हो जाता है; अवश्य ही विवेककी धारा बदल जाती है। उसका विवेक सदा जाग्रत् रहता है जो कभी उसको प्रभुके विपरीत विचार या क्रिया नहीं करने देता, कभी संदेह नहीं आने देता और उत्तरोत्तर विश्वास, अनुकूल आचरणकी प्रवृत्ति और सात्त्विकी शान्ति तथा आनन्दको बढ़ाता रहता है। अतएव अपनी ओर सदा देखते रहना चाहिये और नित्य निरन्तर भगवान्की अहैतुकी कृपाका, उनकी महान् प्रीतिका स्मरण करते रहना चाहिये। विश्वास जितना ही बढ़ेगा, उतनी ही निर्भरता बढ़ेगी, उतना ही समर्पण पूर्णताकी ओर जायगा। विश्वास रक्खो—भगवत्कृपासे ऐसा हो ही जायगा। शेष भगवत्कृपा। तुम्हारा—

(३)

तन्त्र-मन्त्र

सम्मान्य महोदय ! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने अपने सरल विश्वास तथा बुरी तरह ठगाये जानेकी घटना लिखी, सो ठीक है। वास्तवमें हमारा नैतिक पतन-सा हो गया है। सभी क्षेत्रोंमें चोरी-ठगी चल रही है। पर इसमें न शास्त्रका दोष है और न इससे शास्त्रके सिद्धान्त ही मिथ्या सिद्ध होते हैं। मैंने गताङ्कके प्रकाशित

पत्रमें लिखा था कि 'सीधे-सादे शास्त्राध्ययनकारी विद्वानोंसे पूछकर उसके अनुसार श्रद्धापूर्वक अनुष्ठानादि करने-करानेपर अधिक सफलता मिलती है—यह मेरा अनुभव है।' मेरा ऐसे ज्योतिषी विद्वानोंसे भी सम्पर्क आया है जो विज्ञापनबाज नहीं हैं, पर विद्वान् हैं तथा शास्त्रका मर्म जानते हैं। उन्होंने जो बातें बतायीं, वे ठीक भी निकली हैं। इसी प्रकार मन्त्रानुष्ठानोंसे भी निश्चित लाभ होता देखा गया है और होता ही है। अतएव ज्योतिषशास्त्र, तन्त्र-मन्त्रादि, उनके प्रयोग, देवाराधन, अनुष्ठान आदि सभी सत्य हैं तथा श्रद्धा-विधिके साथ अनुष्ठान करने-करानेपर उसका फल भी अवश्य होता है। मेरे पास एक विद्वान्‌का पत्र आया है। वे अपने लंबे पत्रमें लिखते हैं कि 'मैं लखपतिसे अधिक धनवान् बननेके लिये, चुनाव जीतकर मन्त्री आदि बननेके लिये तन्त्र-मन्त्रवालोंके जालमें फँसता रहा। XXXनिर्धन होनेके बाद दुबारा तान्त्रिकोंके चक्करमें आया; किंतु प्राप्त हुई केवल निराशा और धन एवं समयका दुरुपयोग·····(अन्तमें) मानव-सेवाके लिये मैंने स्वयं इन विद्याओंका मनन, चिन्तन, अध्ययन तथा प्रयोग किया और मैं सफल हुआ।' इससे यह सिद्ध होता है कि ये सब भारतीय शास्त्र तथा विद्याएँ तो सर्वथा सत्य हैं, इनका यथाविधि श्रद्धापूर्वक सेवन करनेपर लाभ अवश्य होता है और प्रतिबन्धकी कठोरता-कोमलताके अनुसार नवीन प्रारब्धका निर्माण भी होता है, पर ऐसे करने-करवानेवाले लोग घट रहे हैं। अश्रद्धा, अविश्वास, विधि-हीनता, अर्थलोलुपता, अन्यायोपार्जित आसुरी सम्पदामें रुचि तथा दुष्कर्मोंपर विश्वास आदि बढ़ रहे हैं, इसीसे ठगी भी बढ़ रही है और इसीसे यथार्थ फल भी प्रायः नहीं प्राप्त हो रहा है। अतएव ठगोंसे सावधान रहकर शास्त्रविश्वास-पूर्वक अनुष्ठानादि करने-करवाने चाहिये। 'कल्याण'में समय-समयपर रामचरितमानसके तथा अन्यान्य अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें लेख निकले हैं, उन्हें पढ़-समझकर यथारुचि यथाधिकार श्रद्धापूर्वक आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिये। निःस्पृह साधुस्वभाव विद्वान् मिल जायँ तो उनसे पूछकर स्वयं करना या उनके द्वारा अनुष्ठान कराना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(४)

बुरे संकल्पके अनुसार काम मत करो

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि पता नहीं, कितने जन्मोंके कितने अच्छे-बुरे कर्म-संस्कार हमारे मनपर अङ्कित हैं। हम जब सत्संगमें, शुभकार्योंमें प्रवृत्त रहते हैं, तब बुरे संस्कार कम जागते हैं; जब असत्-सङ्ग और असत् कार्योंमें लगते हैं, तब बुरे संस्कार अधिक जागते हैं। पर जब वे अंदर हैं तो उनका जगना स्वाभाविक है। साधकका कार्य तो है—बुरे संस्कार जगनेपर उनके अनुसार कार्य न करना, उन्हें कार्यरूपमें परिणत न होने देना। बुरे संस्कार मनमें जगनेपर यदि हम उनके साथ न मिलकर उनको कार्यमें परिणत न होने देंगे तो वे क्रमशः मर जायँगे। पाप-संस्कारोंका उदय हो सकता है, मनमें काम-क्रोध-लोभादिकी वृत्ति जग सकती है, पर उसमें आसक्त न होकर उसे वहाँका वहीं मार देना—यही साधकका कर्तव्य है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(५।२३)

'जो मनुष्य शरीरके त्यागसे पूर्व ही काम-क्रोधसे उत्पन्न वेगको सहन करनेमें समर्थ है, वही योगी है और वही सुखी है।'

अभिप्राय यह कि उनके वेगको बाहर न निकलने दे, अंदर-ही-अंदर सहन कर ले—उसका नाश कर दे। साधकको यही करना है। अतएव आपसे यही निवेदन है कि आप सावधानीके साथ मनमें उत्पन्न होनेवाले बुरे संकल्पोंके अनुसार कार्य न करें, उन्हें भीतर-ही-भीतर मार दें और यह निश्चित है कि उन्हें कार्यमें परिणत होनेका अवसर नहीं मिलता रहेगा तो वे मर जायँगे। साथ ही अपनेको सदा सत्प्रवृत्तिमें—अपने मन-इन्द्रियोंको यथासाध्य सत्‌में लगाये रक्खें तो नये संस्कार शुभ होंगे, वे ही जगेंगे, पुराने दब जायँगे और भगवान्‌की कृपासे भगवच्छरणागति या तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो गयी तो सारे कर्म-संस्कार ही दग्ध—विनष्ट हो जायँगे।—

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि।·····

और—

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते।·····

प्रसिद्ध है। शेष भगवत्कृपा।

(५)

शान्तिके लिये कर्तव्य

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। जहाँतक बने, छोटे भाईके साथ सद्व्यवहार, प्रेमका बर्ताव कीजिये। उसके दोष न बताकर उसके गुणोंको ढूँढ़िये। (गुण भी अवश्य होंगे ही) और उसकी तारीफ कीजिये। वह नाराज भी हो तो उसको बार-बार स्नेह दीजिये। अपनी भूल स्वीकार कीजिये। धैर्य रखिये।

भगवान्‌से उसको तथा अपनेको सद्बुद्धि प्रदान करनेके लिये प्रार्थना कीजिये।

दफ्तरमें भगवान्‌के सामने सदा सच्चे बने रहिये। काम जैसे लगनसे करते हैं, करते रहिये। अन्तमें सत्यकी ही जय होगी। खुशामद तो नहीं, पर यथासाध्य अपने उच्चाधिकारीसे मेल बढ़ाइये तथा भगवान्‌से विश्वासपूर्वक प्रार्थना करते रहिये। प्रार्थनामें अमोघ शक्ति है। शेष भगवत्कृपा। आपका—

(६)

सबमें एक ईश्वर या आत्माको देखनेपर ही दुःखनाश

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। पत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है। आपने लिखा, सो ठीक है, पर वास्तवमें सारे दुःख तथा बन्धनका कारण है—शरीर और नाममें 'अहंता' तथा प्राणि-पदार्थोंमें 'ममता'। शरीर तथा नाम दोनों ही 'मैं' नहीं हैं। पर इनमें मिथ्या 'मैं' पन इतना गाढ़ा हो गया है कि उसको लेकर यह मेरा देश, यह मेरी जाति, यह मेरा मजहब, यह मेरा मत, यह मेरी पार्टी, यह मेरा घर, यह मेरा धन, यह मेरा अधिकार आदिके रूपमें इतने मिथ्या ममताके बन्धन हो गये हैं और उनमें इतना अधिक 'राग' हो गया है कि रात-दिन उन्हींकी चिन्तामें ग्रस्त रहना पड़ता है; इस मिथ्या ममत्वको लेकर हमारा 'स्व' स्वाभाविक ही संकुचित होते-होते केवल एक व्यक्तिमें, शरीर तथा नाममें आकर केन्द्रित हो गया है। यही कारण है कि आज हम जीवजगत्, विश्व, देश और जनताके हितको ही नहीं, अपने परिवारके अन्यान्य सदस्योंके हितको भी भूलकर केवल व्यक्तिगत—अपने 'शरीर तथा नाम' का ही हित-साधन करनेमें लगे हैं और यह निश्चित है कि जितना ही 'स्व' सीमित होगा, उतना ही 'स्वार्थ' निम्न स्तरका होगा। वह दूसरोंका हित न देखकर ही नहीं, उनका अहित करके भी अपना हितसाधन करना चाहेगा और यों जब सभी लोग या अधिकांश लोग दूसरोंका अहित करके अपना हित करनेमें लगेंगे, तब किसीका भी हित न होकर सभीका अहित होगा। कलह, संघर्ष, उपद्रव, क्रोध, वैर, हिंसा स्वाभाविक कार्य हो जायँगे। आज सर्वत्र यही हो रहा है। इसीसे आज देश-देशमें, धर्म-धर्ममें, प्रान्त-प्रान्तमें, जाति-जातिमें, पार्टी-पार्टीमें, पड़ोसी-पड़ोसीमें, घर-घरमें और व्यक्ति-व्यक्तिमें लड़ाई है तथा मानवता मरी जा रही है! यह पाप उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है! पापका फल अशान्ति तथा दुःख तो होगा ही, निश्चित।

अतएव इससे यदि बचना है तो उसका एक ही उपाय है—'स्व' को अत्यन्त विस्तृत कर देना। एक ही आत्माको सबमें तथा सबको एक ही आत्मामें देखना—

'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।'

(गीता ६। २९)

यह होनेपर सहज ही सबके हितमें अपना हित और सबके अहितमें अपना अहित दिखायी देगा। वर्ग, वर्ण, कार्य अलग-अलग रहेंगे। जिस प्रकार एक ही शरीरमें सिर, पैर, आँख, कान आदि अङ्गोंके विभिन्न नाम-रूप हैं तथा सबके कार्य अलग-अलग हैं, पर सभी एक ही शरीरके विभिन्न अङ्ग हैं—सभी 'मैं हूँ' ऐसी हमारी धारणा है, इसलिये सभी अङ्ग सहज ही सब अङ्गोंकी पुष्टि तथा सहायता करते हैं। सबके हितमें ही सब अपना हित समझते हैं। कोई किसीको दुःख पहुँचाना या किसीका अहित करना नहीं चाहता। वरं सभी सबको दुःखसे बचाते रहते हैं। इसी प्रकार जब यह निश्चय हो जायगा कि एक ही भगवान् या एक ही आत्मा सबमें है और सब उसीमें है तो स्वाभाविक ही सबके द्वारा सबका हित होगा। फिर द्वेष, क्रोध, कलह, वैर, हिंसाको कहीं स्थान ही नहीं रह जायगा। सब सबका स्वाभाविक ही सुख-हितसाधन करेंगे।

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।'
'अब हौं कासों बैर करौं।
कहत पुकारत प्रभु निज मुख सों घट-घट हौं बिहरौं॥'
'सबमें मैं ही रम रहा, सब ही मेरे अंग।
सब ही 'मैं' फिर, कौन-सा करूँ अंग मैं भंग?॥
किसी अंगपर लगेगी चोट बड़ी या अल्प।
निश्चय ही वह लगेगी मुझको, बिना बिकल्प॥
तब फिर कैसे करूँ मैं किस परका अपकार?
कैसे किसको दुःख दूँ, कैसे करूँ प्रहार?॥
नाम-रूप हैं देहके कल्पित असत् विभिन्न।
सबमें अन्तर्निहित हैं ईश्वर एक अभिन्न॥'

इस परम सत्यको भूलकर ही आज हम सब परस्पर एक-दूसरेकी मानस-शारीरिक हिंसा करते हुए वास्तवमें अपनी ही हिंसा कर रहे हैं। स्वार्थ-साधनके भ्रममें अपने ही स्वार्थका नाश कर रहे हैं। भगवान् हम सबको सद्बुद्धि दें। शेष भगवत्कृपा।

भगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

[पिछली नाम-जपकी सूचना तथा आगेके लिये प्रार्थना]

१–९३५ स्थानोंके नाम हमारे यहाँ नोट हुए हैं, जहाँ जप हुआ है। बहुत-से लोगोंने सूचना ही नहीं दी है। नामोंको नोट करनेमें पूरी सावधानी बरती है, फिर भी रोमन लिपिमें नाम लिखे रहनेसे उन्हें देवनागरी लिपिमें करनेपर उच्चारण-भेद हो सकता है। बहुत-से पत्र ऐसे हैं, जिनमें नाम ठीकसे पढ़नेमें नहीं आता। पूरी चेष्टा रक्खी गयी है कि नाम ठीकसे पढ़ा जाय, पर इसमें भूल सम्भव है। कुछ पत्र डाकविभागकी गड़बड़ीसे, कुछ हमारे कार्यालयकी लापरवाहीसे चढ़े बिना भी रह सकते हैं।

२–मन्त्र-संख्या—२८, ३५, ६१, ९०० (अट्ठाईस करोड़, पैंतीस लाख, इकसठ हजार, नौ सौ)

नाम-संख्या—४, ५३, ६९, ९०, ४०० (चार अरब, तिरपन करोड़, उनहत्तर लाख, नब्बे हजार, चार सौ)

(क) बहुतसे लोगोंने जप करनेकी सूचना दी है, संख्या नहीं लिखी।

(ख) षोडश मन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी लोगोंने जप किया है।

(ग) कई लोगोंने अब इस क्रमको जीवनभर निभानेका निश्चय किया है।

(घ) विदेशसे भी कुछ सूचनाएँ आयी हैं। भारतका शायद ही कोई प्रदेश बचा हो, जहाँ जप नहीं हुआ हो।

(च) बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान् सभी तरहके लोगोंने जपमें भाग लिया है।

(छ) अधिकांश जप व्यक्तिगतरूपमें हुआ है, कुछ सामूहिक रूपसे भी।

अकबरपुर, अकोला, अघरखड़ा, अचलजामू, अजबपुरा, अजमेर, अजीतगंज, अठाना, अठेहा, अन्तपैठ, अन्तागढ़, अन्धरीसात, अन्नाभलईनगर, अनीसाबाद, अनूपगढ़, अमनौर गोसी, अमरूपुर, अमररौधा, अमलनेर, अमलिया, अमृतसर, अम्पोला, अम्बरनाथ, अम्बाड़ा, अम्बाला, अम्बाहा, अर्जुननगर, अमासत, अयोध्यागंज, अरई, अरड़क, असारा, अर्सआखास, अलीगढ़, अलीगंज, अल्मोड़ा, अलीबाग, अलीराजपुर, असवार, असियावाँ, अहमदाबाद, अहरौला, आगरा, आजिमगंज, आठगढ़, आनंद, आयराखेरा, आरा, आलमपुर, आवगिलासायर, आँतरी, ओटगन, ओट्टापल्ल, औरंगाबाद, औसेर, इचलकरंजी, इच्छेबस्ती, इकटी, इसकेल बुजुर्ग, इटारसी, इटावा, इटौरा, इटावाकिसुन, इन्दौर, इम्फाल, इब्राहिमपट्टन, इमामगंज, इलाहाबाद, ईडर, ईरा, उज्जैन, उडीपी, उदनाबाद, उदयपुर, उन्नाव, उबाले, उमधा, उमरीढाना, उमाच, उरई, उरदान, उल्हासनगर, ऊँझा, ऋषिकेश, एकडंगा, एकमा, कचौट, कटनी, कटरूआ, कटिहार, कटीपाली, कट्टूलगढ़, कठौतिया, कदवासा, कन्नौद, कन्हौलीगजपति, कनासिया, कपकोट, कपठल, कपासन, कफलोड़ी पट्टी, कमासिन, कमालगंज, कर्नलगंज, करदात, करणगाँव, करनाल, करवाड़, करहल, करसौल, करूर, करेली झिरनावार्ड, कलकत्ता, काकरियाँ, काकीनाड़ा, कागूपाडू, काठगोदाम, कानपुर, कारकून खेड़ली, कालीम्पोंग, कालूपाकड़, कालेसरा, काँकेर, काँटिया, काँधचट्टी, काँधला, किलाबाजार, कीछा, कुआँगढ़ी, कुआँड़ोगोला, कुकरौन, कुटासा, कुठालगाँव, कुंडिया, कुडुम्बा, कुणघर, कुदरा, कुमना, कुशलगढ़ी, कुसुम्भो, कूँतरती, केथनीपोल, केवलारी, कैकलूर, कैथवाड़ा, कैराना, कोझीकोड़े, कोट, कोटफतुही, कोटड़ी, कोटेपल्ली, कोटलीकलाँ, कोटा, कोठालंका, कोठारिया, कोठीचारकलाँ, कोयम्बतूर, कोरबा, कोलकुलपल्ली, कोलर, कोल्हापुर, कोसली, कोड़ियागंज, कौठप, कौलोडिहरी, कौंच, कंकराज, खड़गपुर, खप्टिहाकलाँ, खम्हरिया, खरकड़ीकलाँ, खरगोन, खरोसा, खलारी, खवासपुर, खारकलाँ, खाराघाड़ा, खिरकिया, खेड़ा, खेजड़ला, खेतिया, खेरागढ़, खैरायातर, खोड़ब, खोरी, खंभात, खाँड, गगोह रामनिवास, गजसिंहपुरा, गढ़र, गढ़शंकर, गढ़ा, गढ़ाकोटा, गढ़ीपुर, गनौग, गया, गरीफा, गरोठ, गल्लेवागाँव, ग्वालपाड़ा, ग्वालियर, गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवाड़ा, गादी श्रीरामपुर, गिरिडीह,

गिरी, गुड़गाँव, गुड़ेबल्लूर, गुलाबपुर, गोंडा, गोनौन, गोरंगचौड़ी, गोपालगंज, गोपालपुर, गोरखपुर, गोलमपुर, गोलमुरी, गोला, गोविन्दपुर, गोह, गोहरा, गौतमपुरा, गौरा, गंगधार, गंगापुर, गांगड़ी, गाँधीपुर, घरयाणा, घाटकोपर, घाटमपुर, घुड़हरसे, घुरलख, घोड़ाडोंगरी, चक, चकराता, चकरी, चखैरूल्लाह, चकेरी, चकौंध, चंडी, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चन्दनपट्टी, चन्दरपुराखुर्द, चन्दा, चनफी, चनौदा, चरलिया, चाईबासा, चाँदपुर गनेश, चान्दपुरा, चान्दी, चानस्मा, चालाकुंडी, चालाकुड़ी, चावड़ा, चिकणी, चिकोड़ी, चिचोणी, चित्तौड़, चित्रकूट, चिनवाड़ी, चिय्येडू, चिरागदेहली, चिलकावर, चिलवरिया, चुरमुनपुर, चोटिया वरियारपुर, चोपड़ा, चौकबरा, चौसा, चौहट्टा, छपरा, छतरपुर, छापर, छिछड़ा, छिन्दवाड़ा, छिबरामऊ, छोटा उदेपुर, छोटी खाटू, जक्कनपुर, जगदीशपुर, जटमलपुर, जनोटी पालड़ी, जबलपुर, जमशेदपुर, जमुई, जम्मू तवी, जयचमरासपुरा, जयपुर, जयपुरा, जरहौलिया, जलगाँव, जवाली, जसबंतगढ़, जहाँगिराबाद, जहीराबाद, जम्बूसर, जागलसर, जामठी, जारडोसी, जालना, जालंधर, जिरौली, जिवाजीगंज, जीराबाद, जे०के०नगर, जेतलपुर, जेलासाँगर, जैकोट, जैन्तगढ़, जैनाल, जोगीपेट, जोत, जोधपुर, जोरावरडीह, जोशीमठ, झगराखाँड, झरियापाली, झाबुआ, झालरापाटन नगर, झाँसड़ी, झाँसी, झुंझनूँ, झुमरीतिलैया, झूमियावाली, झूलाघाट, टकूर, टिमरनी, टीकमगढ़, टेहटा, टोहनामंडी, ठिकहाँ, ठीकहा भवानीपुर, ठूठीबारी, ड्योढ़ी, डाल्टनगंज, डिगरी, डिमौली, डीकैन, डुमरपानी, डुमरियाखुर्द, डुमरी, डेहरी, डोगाँव, डोम्हाटोला, डोरंडा, डौंडी, ढरमेर, ढलकी, ढाँगल, तमड़ा, तमोरिया, तरीपल, तरेंगा, तलेगाँव, तारालाही, तिकोनिया, तिगिना, तिम्माकाईपुरम्, तिम्माचिपुरम्, तिरकुटी, तिरको, तिरोड़ा, तिलकपुर, तिलहर, तिवरखेड़ा, तिवारी धाम, त्रिनपट्टी, तीरमऊ, तुंगणी, तुर्तीपुर, तुरकहिया, तुमेन, तेघड़ा, तेलकुंड, तेलडीह, ददरौल, दबोहा, दमोह, दशरमन, दहगुण, दाता, दिगाँव, दिनारी, दिल्ली, दीगड़ी, दुंदपुर, दुर्ग, देवगढ़, देवनन्द, देवरी, देवास, देहरादून, दोआबा, दोन, धनगाँवा, धनवाय, धनौरा, धमनापायक, धर्मशाला, धामणगाँव, धामपुरा, धारवाड़, धुलसर, धौलपुर, नई दिल्ली, नई सराय, नगरा, नगरासहा, नचेड़, नन्दानगर, नन्दुरबार, ननौरा, नमवरदार, नरवारा, नरसिंहपुर, नल्ल, नवापुर, नवांशहर, नागपुर, नागल, नागौर, नारहठ, नारदीगंज, नारायणपुर, नासिक, नाहरगढ़, नान्देड़, निरमली, निरोड़ी, निलपाथुर, निवहर, नेपालगंज, नेहरूनगर, नैगीपाड़ा, नैनी, नौरोजाबाद, पखरपार, पखरियावाड़, पचरुखा, पट्टीकल्याण, पटुलिया, पटोरी, पडरिया, पनहांस, परतेवा, परनूर, परली वैजनाथ, परसदा, परसा, परसीपुरपतौना, पवारखेड़ाफार्म, पाई, पाकड़ी, पाटन, पाढ़रकौड़ा, पाथड़ी, पानेटोला, पायना, पाली, पालीताना, पिपरावगाही, पिपरिया, पिपरीगहरवार, पिपलू, पिलानी, पीनना, पीपलराबा, पीपलबाड़ा, पीपला, पीपल्याजोधा, पीपलू, पुकारी, पुखराँय, पुरहिया, पुराना आबादी, पुराना पानापुर, पुराना वारीडीह, पुरनिया, पुरौनी, पुलगाँव, पुलियूर, पुडुकोट्टाई, पुवायाँ, पुसौली, पूना, पूर्वशिरी, पेसम, पैची, पोतलगढ़, पोयासी, पंडरीपानी, पंघायेगाँव, पंथपाकर, प्रकाशनगर, प्रतापगढ़, प्रहंदा, फतेहगढ़, फबहाबाद, फरसवहार, फरसार, फरह, फरहदा, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फलौदी, फागी, फिगिरिरया, फिरोजाबाद, फिरोजपुर, फुलगाँव, फुलतामऊ, फैजपुर, फोरती, बकेवर, बगासपुर, बघोल, बच्छोआना, बजबज, बजरंगगढ़, बजाउराह, बट्टागुंडा, बड़गारा, बड़गाँव, बड़ावद, बड़ौत, बढ़याचौक, बदायूँ, बनकट्टी, बभनान, बमकोई, बम्हनी, बमराली, ब्रह्मावली, बरवट, बरवाई, बराटा, बरूँघन, बरेली, बल्लारपुर, बलिया, बलुआ, बस्ती, बसार, बसालतपुर, बरनाला, बसीकलाँ, बाकरपुरजगत, बागपिपरिया, बागड़िया, बाघानाला, बाँदा, बारसेनबाजार, बारा, बाराँ, बासडोली, बाराबंकी, बालगढ़, बालंगिर, बालबंगरा, बालापुर, बालोन, बावल, बासन, बाँसगाँव, बाँसदेवा, बाँसवाड़ा, बाँसवेड़िया, बिछवा, बिजनौर, बिरौड़ी, बिजोलिया, बिरौल, बिलासपुर, बिसरा, बीकानेर, बीनागंज, बुधनई, बुरा, बेतुल, बेमेतरा, बेरसिया, बेलगाम, बेलमंडई, बेलरी, बेहटा, बोकरंदा, बोराज, बौनसरा, बौराद, बंगलौर, भटगम्मा, भटियारी, भट्टपुरा, भदपुरा, भदान, भदेवाँ, भदौनी, भद्रा, भद्रेश्वर, भरतपुर, भरथापुर, भरियौली, भरूँच, भलेपुर, भवदेवपुर, भवनी, भाईसबाद, भागलपुर, भाटापारा, भाटावारी, भालोद, भावनगर, भिलाई, भीकन,

भींडर, भुरका, भुवन, भुवनेश्वर, भुसावल, भेलवरिया, भोकरदन, भोपाल, मधवापुर, मच्छकुण्ड, मछरिहा, मड़िया, मढ़न, मणीपुर, मतलोग, मथुरा, मथुराबाजार, मदुरा, मद्रास, मनफरा, मनासा, मनेन्द्रगढ़, मयून, मलकीसर, मलणगाँव, मल्हारगढ़, मलहारा, मलाड़, मल्लाक्वायरी, मवई, मस्की, मस्तीचक, मसकनवा, मसर्हिया, महकबनगर, महनार, महम्मदपुर, महाजनपेठ, महाराजपुर, मंडल, महावीर, महुआवा, महुआ, महुतरी वीर्ता, महुली, महेगाँव, महोखरा, मार्टे, मांडल, माणिकपुर, मातौल, माधोपाली, माधोपुर मोबिन्द, मानपुर मगरिया, मानाकैम्प, मालाकपूरी, मालीपुर, मालेगाँव, मिर्जापुर, मियाँफलासका खेड़ा, मीतनघाट, मीरशाली, मुकलावा, मुकुन्दगढ़, मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरपुर, मुरलीचंदबाद, मुरादाबाद, मुलाताकी, मुहम्मदाबाद मोहना, मेड़िया, मेहंथ, मैनपुरी, मैसूर, मोठ, मोदीनगर, मोरवी, मोहभट्ट, मौदह, मौदहचतुर, मौलागढ़, यूना, येवले, रघुनाथपुर, रजागपेट, रतनगढ़, रतलाम, रमियाबेहड़, रसीदपुर, रहनाबोगला, रहावली उबारी, राउरकेला, राजकोट, राजगढ़, राजनन्दगाँव, राजमहेन्द्री, राजलदेसर, राजवाटि, राजापुर, राठ, राड़ेप, राधाउर, रानीखेत, रानीपुर, रानीला, रामकृष्णलोक, रामचन्द्रपुरम्, रामछाँबरी, रामतीर्थ, रामनगर, रामपुर, रामसागर, रायचूर, राचोटी, रायपुर, रायघुररानी, रायमलपुर, रार, रायमा, रावतपुर, रावेर, राँची, रिखड़ि वेला, बारवल रीठ, रीवाँ, रुद्रप्रयाग, रुनखेड़ा, रेवदार, रोटा, रोपाँ, रोहिणी, लखधिरवास, लखनऊ, लछमनपुर, लत्ता, लदौर, ललितपुर, लश्कर, लहार, लावेरी, लाड़नूँ, लादीगढ़, लाम्बा छोटा, लालगढ़, लासलगाँव, लासूर, लाहेगाँव, लाजीगढ़, लिग्न्या, लीलापट्टीवन कीचा, लीलापुर, लीलायान, लुधियाना, लोटवा, लोणावला, लोहट, लोहरैठ, लोहार्गल, लोहादी, लौर, वमाइन, वड़ीआश्रम, वदरवास, वनतोली कत्पुर, वरबर, वरियारपुर, वरूमटा, वरौधा, वहोरमदारमाझा, वलैठा, वाकीनाड़ा, वापुर, वायुत, वाराणसी, वार्वालाल, वारु, विक्रमनगर कोटला, विजयपुर, विदिसा, विरौड़ी, विलखी, विलंदा, विलसड़ा, विशाखापट्टनम्, विसगंज, वीड़, वीणा अंदौली, वीरनगर, वृन्दावन, वेवांगी, वेलखरा, वेंकटगिरी, वैसाडीह, वोरली, शरफुद्दीनपुर, शशीबाला, शहडोल, शापुरकलाँ, शाजापुर, शाहगढ़, शाहनगर, शाहपुर पगड़ा, शिरकोटी, शिकौटी, शिरूरकासार, शिलकोट, शिवगंज, शिवली, शिवसिंहजीका गुड़ा, शेरगढ़, शेरगाँव, शेरपुर, शेलूबाजार, श्रीनिवासपुर, श्रीरामपुर, श्रीरामपुर अयोध्या, सठियाँव, सतगढ़मजेड़ा, सतना, सतारा, सनवाड़ा, सनाय, सनावद, सम्बलपुर, सम्याकरपुर, सरकंडा, सरखों जाँजगीर, सरगाँव, सरदारशहर, सरसागंज, सरिया, सरैयागंज, सरौना, सहराना, सहारनपुर, संगरूर, सरेरीमदनपुर, सागरदिघी, सातोजोगा, साधोपुर, सामागुड़ी, साहेबगंज, साँड़ा, साँभर, सिआली, सिकरिया, सिणगारा, सिद्धपुर, सिधपकला, सिधोलाग्राम, सिमरी, सिमरौल, सिरसा, सिलवानी, सिवनी, सिवाड़, सिसौना, सिहोर, सिहोरा, सिंगपुरगंजन, सिंगापुर, सिंग्रामपुर, सिंगाही, सिंघावली, सीतामऊ, सीतामढ़ी, सीतारामपुर, सीहौरा, सीवन, सुकेत, सुन्दरसी, सुपौल, सुभाषनगर, सुरजावासा, सुल्तानपुर, सुल्तानगंज, सुलिया, सुसारी, सूनार, सूबेदारी, सूरजपुर, सूरजपोल, सूरत, सूरतगढ़, सेजपुरिया, सेवास उर्फ बेगमगंज, सैदपुर, सैलवारा, सोनीपत, सोयगाँव, सोरर, हनमकुंड, हमीरपुर, हरदीबाजार, हरद्वार, हरिनगर, हरियाउ, हरियाबाद, हरिहरपुर, हसन, हसुआ, हाजीपुर, हाटा, हातनूर, हापुड़, हाँफा, हारीज, हियासपुर, हिरनी, हिलौधा, हिवराकोरडे, हिसार, हिंगनघाट, हिंडोरिया, हुबली, हुमनाबाद, हैदराबाद ।

भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

सदाकी भाँति इस वर्ष भी २० करोड़ १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके जपके लिये प्रार्थना की जाती है ।

यह जप कार्तिक शु० १५ रविवार सं० २०२६ (२३ नवम्बर १९६९) से आरम्भ होकर आगामी चैत्र शु० १५ मंगलवार सं० २०२७ (२१, अप्रैल १९७०) तक पाँच महीने करना है । विशेष विस्तृत सूचना अगले अङ्कमें जायगी । पर अगला अङ्क यदि देरसे पहुँचे तो नाम-प्रेमी महानुभाव तथा माता-बहिनें कार्तिक शु० १५ से जप अवश्य आरम्भ कर दें । यह विनीत प्रार्थना है ।

नाम-जप-विभाग—'कल्याण'-कार्यालय
पो० गीताप्रेस, गोरखपुर

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कर्तव्य-पालनमें दृढ़ता

संवत् छप्पनसे पहले आणंदसे खंभात बैलगाड़ीमें ही जाना पड़ता। खंभातके बहुत-से सेठ बम्बईमें व्यापार करते। उस जमानेमें चाहे कोई कितना ही धनी हो, विवाह-शादी देशमें आकर ही करता। एक दिन बम्बईसे मेलमें सवार होकर विवाह-कार्यके लिये खंभातके एक सेठ सुबह अँधेरे-अँधेरे ही आणंदमें आकर उतरे। वहाँ एक बैलगाड़ी भाड़े की गयी। बैलगाड़ी बड़ी होती थी, उसमें सेठ, सेठाणी, बच्चे तथा गुमास्ता सब बैठ गये। सारा सामान भी ठीकसे जचा दिया गया। बैलगाड़ी खंभातके रास्ते चली। बीचमें दुपहरके समय एक कुएँके पास पेड़की छायामें विश्राम करके साथ लाया हुआ नाश्ता किया। फिर गाड़ी चली और शाम होते-होते पंडोलीके पास आ पहुँची। पंडोलीसे खंभाततक रातकी मुसाफिरीमें लूटपाटका भय था। अतएव रखवालीके लिये कोई आदमी साथ लेना चाहिये। पंडोलीमें ऐसे ठाकुर प्रसिद्ध थे। उनमेंसे कोई यदि रखवाली-पर हो तो फिर दूर-दूरतक किसीकी ताकत नहीं, जो गाड़ी लूट ले। रात होते ही गाड़ी पंडोलीमें रोक दी गयी और सेठका गुमास्ता एक प्रसिद्ध रखवाल ठाकुरका घर पूछता हुआ वहाँ पहुँचा। पूछा—'अमुक ठाकुर घरमें हैं?' भीतरसे ठकुरानीने जवाब दिया—'ठाकुर खेत गये हैं; जल्दी न हो तो बैठिये, जल्दी वे घर आ जायँगे।' यों कहकर ठकुरानीने गुमास्तेको सेठ कहकर बैठाया। उस समय ठाकुरका चौदह वर्षका एक लड़का था, वह बोला—'बापूजीको तो आनेमें देर होगी। तुम्हारे जल्दी हो तो मैं तुम्हारे साथ चलूँ।' गुमास्तेने कहा—'भाई! तुम तो अभी बालक हो, तुमसे कैसे रखवाली होगी?' लड़केने जवाब दिया—'सेठ! मैं भी अपने बापका लड़का हूँ; मुल्क-भरमें किसकी ताकत है जो मेरा नाम ले। तुमको विश्वास हो तो मैं साथ चलनेको तैयार हूँ।' गुमास्तेने कहा—'हमारे तो रक्षासे काम है, तुम यदि रक्षा कर सकते हो तो अच्छी बात है, तुम्हीं चलो। हमें आपत्ति नहीं है।' लड़केने माँसे थाली परोसनेको कहा। लड़का भोजन करके गुमास्तेके साथ चल दिया। तबतक गाड़ीमें बैठे हुए लोग शामके भोजनसे निवृत्त हो चुके थे। गाड़ी चल पड़ी। इधर कुछ ही देर बाद रोजके समय ठाकुर खेतसे घर आये और भोजन करने बैठे। प्रतिदिन शामके भोजनके समय लड़का साथ बैठता। आज लड़केको न देखकर ठाकुरने ठकुरानीसे पूछा—'गंगा कैसे दिखायी नहीं देता है?' ठकुरानीने मुसकराते हुए कहा 'वह तो रखवालीपर गया है।' उस समय रखवालीकी रातभरकी पूरी जिम्मेवारीके बदलेमें मिलता था केवल एक ही रुपया, पर वह रुपया ऐसा था, जिससे छः सेर घी और डेढ़ मन दूध मिलता। अतएव मेरा बच्चा पहले दिन कमाने गया, इसका माँके मनमें गर्व होना स्वाभाविक था। परंतु पिता विचारमें पड़ गया। जल्दी-जल्दीमें कुछ खा-पीकर हाथ धोकर उठा और चार-पाँच मित्रोंको लेकर खंभातके रास्ते जाती हुई गाड़ीके पकड़नेके लिये खेतोंका नजदीकका रास्ता पकड़ा और कुछ ही दूर जाकर सामने आकर बैलोंकी नाथ पकड़कर गाड़ी हाँकनेवालेको हुक्म दिया—'उतर जा नीचे।' बैलोंकी बजती घंटी बंद हो गयी। लड़केने पुकारकर कहा—'खबरदार, जो भी कोई हो, चले जाओ। मैं अमुक ठाकुर-का कुँअर हूँ—रखवालीके लिये साथ आया हूँ।' यह सुनकर उसका पिता ठाकुर बोला—'तू क्या देखकर रखवाली करने आया है? तेरे-जैसे तो मेरे पेटमें चुन्ने (कृमि) खेल रहे हैं।' पिताकी आवाज पहचानकर लड़का पास आ गया और बोला—'बापू! रास्ता पकड़ो; मैं अपनी इज्जत-आबरू नहीं जाने दूँगा।' पिताने फिर दो-चार गाँलियाँ सुनायीं। तब लड़केने कहा—'बापू! मैं अपने बापका लड़का हूँ। तुम्हारा तो जीवन पूरा हो गया है, पर मुझे अपने जीवनकी अब शुरुआत करनी है। इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। मै अपनी इज्जत-आबरू नहीं खोऊँगा।' इस समय पिता बैलोंकी जोत खोल रहा था।

पिताने फिर दो-चार गालियाँ सुनाकर कहा—'जा-जा! अभी तो तेरी नाल ही नहीं सूखी हैं और आया है रखवाला बनकर।' लड़केने तलवार निकाली और जिस दाहिने हाथसे पिता जोत खोल रहा था, उसीपर तलवार चला दी; पिताका हाथ कटकर नीचे गिर पड़ा। अब तो

बायें हाथसे लड़केका कंधा थपथपाकर प्रसन्नतासे ठाकुरने कहा—'अब तू मेरा लड़का सच्चा। खुशीसे रखवाली कर।' साथ चद्दर थी, कंधेसे हाथ छूटा, तो मांसका टुकड़ा निकल पड़ा। खून बह रहा था। उसे चद्दरसे बाँध लिया और कटे हुए हाथको जमीनमें गाड़नेके लिये साथ लेकर ठाकुर अपने साथियोंको ले पिंडोली वापस लौट गया।

ऐसे तेजस्वी लोग थे—उस समय वहाँके गाँवोंमें।

(अखण्ड आनन्द)

—भाई लालभाई थाभाई पटेल

(२)

क्रोधावेशमें मनुष्य पागल हो जाता है

श्रीगोपालदास तथा कन्हैयालाल चचा-भतीजा थे। कन्हैयालालके पिता श्रीगोविन्दप्रसादका देहान्त बहुत छोटी उम्रमें ही हो गया था, गोपालदासजीने उसको पाल-पोसकर बड़ा किया, विवाह किया तथा एम्० ए० तक पढ़ाया था। कन्हैयालालका स्वभाव कुछ रूखा था, क्रोध जल्दी आ जाता था। वह जल्दी उत्तेजित हो जाता था। पर श्रीगोपालदास तथा उनकी पत्नी लक्ष्मी सब सहन ही नहीं करते थे, उसे बच्चा समझकर उसके हितकी ही सोचा करते थे। अपने बच्चोंसे भी अधिक प्यार करते थे।

एक दिन कन्हैयालालको फर्मके किसी जरूरी कामसे जाना था, पर वह उस कामके लिये न जाकर मित्रोंके साथ सिनेमामें चला गया। उसके न जानेसे काममें हानि हो गयी। इसका गोपालदासको दुःख हुआ। इसपर गोपालदासने कन्हैयालालको केवल इतना ही कहा कि 'भैया! तुम अब बच्चे नहीं रहे हो, जिम्मेवार पढ़े-लिखे व्यक्ति हो। जरूरी काममें यों अवहेलना करोगे तो कैसे काम चलेगा?' कन्हैयालाल उस समय तो कुछ नहीं बोला, पर दूसरे दिन आगबबूला हुआ आकर दूकानपर ही गोपालदासका तिरस्कार करके प्रलाप-सा करने लगा। उसने कहा—'तुमको बड़ा अभिमान हो गया है, जो मुझे जिम्मेवारी सिखा रहे हो। मैं तुम्हारा गुलाम नहीं हूँ। अबतक मैंने सब कुछ सहा, अब नहीं सहूँगा। आज ही सारा हिसाब-किताब निपटाकर मुझे अपनी रकम दे दो। जरा भी आना-कानी की तो मैं कोर्टमें नहीं जाऊँगा, मेरे शरीरमें ताकत है। तुम-जैसे भुनगोंको खतम करनेमें जरा भी देर नहीं लगेगी।' यों कहकर वह चाहे जैसे बकने लगा।

गोपालदास चुपचाप सब सुनते रहे। जरा भी नहीं बोले। कन्हैयालाल उल्टा-सीधा बककर चुप हो गया। कुछ देर रुककर चला गया। अग्निमें आहुति नहीं पड़ती, ईंधन नहीं पड़ता तो अपने-आप ही बुझ जाती है। इसी प्रकार एकके क्रोध करनेपर दूसरा यदि कुछ भी नहीं बोलता तो क्रोध भड़कता नहीं, अपने आप ही कम हो जाता है। यही हाल कन्हैयालालका हुआ। वह घर गया! बुरी सलाह देनेवाले असदाचारी दोस्तोंने बुरी नीयतसे उसको भड़का दिया था। घर जाकर उसने पत्नीसे सारा हाल कहा। वह समझदार थी। उसने बड़े नम्र शब्दोंमें समझाकर उसे वास्तविक स्थितिपर पहुँचा दिया। अब तो उसे अपनी भूलपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ, उस दिन उसने रोटी नहीं खायी।

इधर गोपालदासके मनमें क्रोध जरा भी नहीं था, इस बातका बड़ा दुःख था कि बच्चेको पता नहीं, क्या हो गया है? वह क्रोधमें कुछ कर न बैठे। उन्होंने घर आकर लक्ष्मीसे सारी बात बताकर कहा कि 'तुम बहूसे मिलकर उसको समझा देना। कन्हैयालाल बड़ा अच्छा लड़का है। अवश्य ही वह किसीके बहकावेमें आ गया है, उसको पीछे दुःख हुआ होगा, वह कुछ कर न बैठे।' लक्ष्मी भी पतिके अपमानसे दुःखित न होकर कन्हैयालालकी अनिष्टाशङ्कासे चिन्तित हो गयी। वह बहूके पास गयी। पता लगा कि कन्हैयालालने रोटी नहीं खायी है और वह पड़ा रो रहा है। चचाके सामने जानेमें उसे झेंप हो गयी है।

लक्ष्मीने आकर पतिसे यह बात कही। गोपालदास तुरंत कन्हैयालालके पास गये और उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। कन्हैयालाल तो फफक-फफककर रो रहा था। गोपालदासने उसे आश्वासन देते हुए कहा—'बेटा! तुम किसी तरह भी मनमें न दुःख करो, न संकोच करो। मैं जानता हूँ, तुम्हारा हृदय बड़ा अच्छा है। तुम अवश्य ही किसीके बहकावेमें आकर उस समय उत्तेजित हो रहे थे। क्रोधके वश हो रहे थे। क्रोधमें सम्मोह तथा बुद्धिनाश हो जाता है। उस समय मनुष्य जो कुछ बोलता-करता है, वह उसके हृदयकी वस्तु नहीं होती। सम्भव है, उसके हृदयका भाव उससे बिल्कुल विपरीत

हो। उस समय तुम तो क्रोधमें पागल थे, पर मैं तो पागल नहीं था। जो मनुष्य किसी क्रोधविवश उत्तेजित मनुष्यकी क्रियाओंको देखकर स्वयं उत्तेजित होकर अपने विवेकको खो देता है, वह उससे ज्यादा अपराधी है, जो क्रोधविवश है। अतएव उस समय मैं यदि विवेक खोकर उत्तेजित हो उठता और तुम्हारी ही तरह बोलने लगता तो तुम्हारी क्रोधकी आगमें ईंधन तथा घी पड़ जाता, वह भड़क उठती। इधर मेरा क्रोध भड़कता और पता नहीं क्या अनर्थ बन जाता। भगवान्‌ने बड़ी कृपा की, जो मुझे विवेकपर स्थिर रक्खा। इसीसे आज तुम्हें पश्चात्ताप करके विशुद्ध होनेका तथा मुझे और स्नेहदान करनेका अवसर मिला। बेटा! तुम जरा भी संकोच न करो। मेरा स्नेह तुम्हारे प्रति बढ़ा है, बढ़ता ही रहेगा।'

यों बहुत-सी आश्वासनकी स्नेहभरी बातें अश्रुपूर्ण नयनोंसे गोपालदासने कहीं। कन्हैयालालका दुःख दूर हो गया और घरमें प्रेमानन्द-सुधाकी सरिता बहने लगी।

—सत्यनारायण गुप्त

(३)

रफी साहेबकी दरियादिली

एक बार एक अपरिचित ग्रामीण भाई मेरे पास आये। किसी जमीदारसे इन्हें पचीस-तीस बीघा जमीन खरीदनी थी। सौदा मुझे करना था और जमीनकी कीमत रफी साहेब देनेवाले थे। उन भाईके हाथमें पत्र था।

मैंने कहा—'आप रफी साहेबको कहाँसे पहचानते हैं?'

'मैं जेलमें इनकी सेवा करता था, कई वर्ष हो गये।'

ये भाई ऐसे नहीं लगते थे, जो कांग्रेसके किसी आन्दोलनमें जेल गये हों, फिर यह जेलकी दोस्ती कैसी?

जाँच-पड़ताल करनेपर पता लगा कि ये चाहे किसी अपराधमें जेल गये हों या किसी आन्दोलनमें; हैं रफी साहेबके दोस्त और जो उनका दोस्त हो, वह वरदानसे वञ्चित कैसे रहे?

रफी साहेबके दोस्त कौन? जो उनके पास पहुँच जाय वही। सेक्रेटरीको आदेश था कि आनेवालेको काम न पूछा जाय। आते ही उसके ठहराने तथा भोजन-पानकी व्यवस्था की जाय। और हाँ, यह नहीं पूछना कि कब जायँगे। सुना गया है कि एक मेहमान तो उनके यहाँ डेढ़ साल रहा था।

इनके घर रातको दरबार लगता। आने-जानेवालोंकी संख्या पचाससे सौ तक होती। कोई अनजान आता और सबके पीछे बैठ जाता तो इनकी आँखें उसे पहचान लेतीं और कुछ ही देर बाद वह इनके कानमें बात कहता देखा जाता। इस दरबारमें मोटरवाले भी आते और पाँव-पयादे भी। कोई भी मेहमान इनके घरसे पैदल क्यों जाय? वे हरेक मोटरवालेके साथ रास्ता और दिशा देखकर एक-एक दो-दोको भेज देते। जो शेष बच रहते, उन्हें अपनी गाड़ीमें भेजते। इसपर भी यदि गाड़ी कम पड़ती तो फोन करके किसी मित्रकी गाड़ी मँगवाते। (अखण्ड आनन्द)

—मनुभाई भीमाणी

(४)

आदर्श मानवता

इसी सालकी बात है। श्री१०८स्वामीजी श्रीब्रह्मावर्तजीके अनन्य श्रद्धालु श्रीमातादीनजी, कानपुरके सुपुत्र श्रीरामेश्वर-दयालजीने अपने एक साथीको ४०००) चार हजार रुपयेका चैक बैंकसे भुगतान लानेको दिया।

उन्होंने बैंकमें जाकर भुगतान लिया और आकर श्रीरामेश्वरदयालजीको नोटोंकी चारों गड्डियाँ दे दीं। उन्होंने नोट सँभाले तो प्रत्येक गड्डीमें १००००) दस हजारके नोट—इस प्रकार कुल ४००००) चालीस हजारके नोट मिले। भूलसे दस-दसके स्थानपर सौ-सौके नोटोंकी गड्डियाँ दे दी गयी थीं।

श्रीरामेश्वरदयालजीके मनमें आया कि बेचारे केशियरने भूलसे सौ-सौके नोटोंकी गड्डियाँ दे दी हैं, इन्हें शीघ्र लौटाना चाहिये। उन्होंने बैंकको फोन करके पूछा तो उत्तर मिला कि ४०००)चार हजार रुपये दिये गये हैं। इसपर श्रीरामेश्वरदयालजी नोटोंकी गड्डियाँ लेकर स्वयं बैंकमें गये और केशियरको गड्डियाँ दिखलायीं। वे तो देखकर आश्चर्यचकित रह गये और हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोले कि 'मुझसे इतनी भारी भूल कभी नहीं हुई थी। आपने मुझे बचा लिया, अन्यथा मेरा जीवन भारी संकटमें पड़ जाता।' रामेश्वरदयालजी अधिक नोट वापस लौटाकर चले आये। यह आदर्श मानवता है।

—रामनारायण पालीवाल, पहाड़गाँव, जालौन

(५)

आदर्श उदारता

गुजरात राज्यके चीफ जस्टिस श्रीदीवान महोदयने कल्पनातीतरूपसे रक्तदानकी रेकार्ड स्थापित की है। आजतक आपने अट्ठावन बार रक्तदान किया है। जबसे उन्होंने रक्तदानका महत्त्व समझा, तबसे हर तीसरे महीनेके प्रथम शनिवारको वे अहमदाबादके स्वैच्छिक रक्तदानकोशमें नियमित रक्तदान करते चले आ रहे हैं। इतना होनेपर भी उन्हें किसी प्रकारकी अशक्ति, दुर्बलता अथवा और कोई तकलीफ नहीं जान पड़ती और वे बड़ी ही स्वस्थताके साथ प्रसन्नरूपसे अपनी जिम्मेवारीका काम सँभाल रहे हैं। श्रीदीवान महोदयको सबके धन्यवाद।

—'अखण्ड आनन्द'

(६)

कुछ उपयोगी प्रयोग

१

एपेण्डीसाईटीस (आन्त्रपुच्छ) पर सफल प्रयोग

एपेन्डीसाईटिसका डाक्टर लोग आपरेशन करानेकी सलाह देते हैं, पर अब इसकी आवश्यकता नहीं। इस अनुभूत उपचारको अपनाइये। यह परीक्षित नुक्सा है। जिन्होंने इसको अपनाया है, पूर्ण लाभ उठाया है। मैंने कई रोगियोंपर इसका प्रयोग करके शत-प्रतिशत सफलता पायी है। जंगलकी एक बूटी 'बनतुलसा' है। उसको पीसकर लुगदी बनाकर किसी लोहेकी करछुल आदिपर उसको गरम करके (भूनकर नहीं) उसपर थोड़ा-सा नमक छिड़क दें और दर्दके स्थानपर उस लुगदीकी टिकियाको रखकर ४८ घंटेमें तीन बार बदल कर बाँधे। इस बीच रोगीको आराम करना चाहिये। इस ४८ घंटेके उपचारके बाद रोग सदैवके लिये जाता रहेगा, विशेष जानकारीके लिये निम्नलिखित पतेपर पत्रव्यवहार कर सकते हैं।

—विष्णुकुमार जिन्दल, धामपुर शुगर मिल्स लि०, धामपुर

२

खाँसी-दमाकी अनुभूत दवा

(क)

काली मिर्च एक तोला, पीपल दो तोले, अनारदाना ४ तोले और जवाखार आधा तोला—इन सबको पीसकर ८ तोले गुड़में मिलाकर चटनीकी तरह कर ले और छोटी चम्मचभर दिनमें तीन बार चाट ले। इससे दुःसाध्य खाँसी मिट जाती है। दमाकी प्रवृत्ति दूर हो जाती है। मेरी बार-बार आजमायी हुई दवा है।

—श्रीमीतीराम जगियासी साधु, ब्लाक नं० ३३६, उल्लासनगर २

(ख)

मुझे दमा-खाँसीकी भयानक पीड़ा थी। स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें मेरे मित्र श्रीसरदारीलालजी (सियालकोट)ने मुझे यह दवा बतायी और इसके सेवनसे मेरा दमा सदाके लिये चला गया। मैंने कई सज्जनोंको दवा बतायी, सेवन करनेपर उनको भी अतिलाभ हुआ। दवा यह है—

मजीठ ढाई तोले, हल्दी पीसी हुई एक तोला, सोहागा फुलाया हुआ एक तोला, पीपल एक तोला। मजीठ और पीपलको अलग-अलग पीसकर कपड़ेसे छान लेना चाहिये।

अदरखका रस ५) तोले, अडूसा (बासा) का रस ५) पाँच तोले, हरे आँवलेका रस ५) पाँच तोले, नीमके पत्तोंका रस ५) पाँच तोले। इन चारों रसोंको खद्दरके कपड़ेसे छानकर पत्थर या काँचके बरतनमें रक्खें, जिससे खराब न हो जाय।

अमलतासकी फलीके गूदेका रस ५) पाँच तोले और घीकुआँरके गूदेका रस पाँच तोले—इन दोनोंके गूदेको अलग-अलग बरतनमें डालकर आगपर रख दें, जिससे गूदा नरम हो जाय। फिर खद्दरके कपड़ेसे निचोड़कर दोनोंका रस निकाल लें।

आधा सेर चीनी आगपर चढ़ाकर उसकी चासनी बना लें, फिर ऊपरकी सब चीजें चासनीमें डालकर उसे हिलाते रहें, जिससे नीचे लगकर कोई चीज खराब न हो जाय। जब चटनीसी बन जाय, तब नीचे उतारकर एक पाव असली शहद मिलाकर किसी खुले मुखवाले बरतनमें डालकर उसे पानीमें रख दें, जिससे चींटी आदि न चढ़ सकें। कपड़ेसे चाहे ढक दें। बस, दवा तैयार है। इस दवाको दिनमें तीन बार एक-एक तोला दवा जीभपर रखकर चाटना चाहिये। चाय, तेल, लालमिर्च आदि न खायँ। भगवान्‌की दयासे शीघ्र लाभ होगा।

—सेवक लूबाराम शर्मा, सेवक आश्रममार्ग, नं० ३० ए०, देहरादून, उ० प्र०

३

मधुमेहकी अचूक परीक्षित ओषधि

उड़हल (जशवन्ती, जाशौन) के फूलकी कलिका मधुमेहका रोगी सबेरे खाली पेट यानी मुँह धोकर एक या दो (कलिका) चबाकर खा जाय। ऐसा एक सप्ताह या रोग अधिक पुराना हो तो एक महीना खाये। यदि अधिक दिन भी खाये तो किसी तरहकी खराबी न होगी, वरं लाभ ही होगा। पेशाबमें शर्करा आना बिल्कुल बंद हो जायगा। ओषधि-सेवनके पहले पेशाबकी जाँच करा लें और ओषधि-सेवनके पश्चात् भी पेशाबकी जाँच कराकर देख लें। पेशाबमें चीनी चाहे जितनी क्यों न आती हो, इससे अवश्य लाभ होगा।

परहेज—चीनी, चावल और आलू न खायँ।

वे रोगी, जो संसारमें हर प्रकारके डाक्टरी, वैद्यक आदि अन्य प्रकारके इलाज करवाकर निराश हो गये हों, एक बार इसका प्रयोग करें, भगवत्कृपासे निराश न होना पड़ेगा। ('धन्वन्तरि' मई १९६८)

—डा० रानलखन विश्वकर्मा (रजि०)
बी० ए० एम्० एस्० (आयुर्वेद)
एम० एम० डी० एस० आई० जी० (टोकियो)
पो० अम्बा, जिला गया (बिहार)

४

कानके रोगोंकी दवा

मेरे बहनोईजीके नौ वर्षसे कानमें मवाद बहती थी, पास बैठनेपर दुर्गन्ध आती थी। मुझे एक संतजीने इसके नाशका एक प्रयोग बताया और उसके करनेपर उनका रोग नष्ट हो गया। उसे लोकहितार्थ यहाँ लिख रहा हूँ।

जामुनके पत्ते, आँवलाके पत्ते, चमेलीके पत्ते, महुआके पत्ते और बड़का वक्कल (अन्तरछाल)। पत्ते सबके बराबर हों। पत्तोंको बड़की छालके साथ पत्थरपर मेंहदीकी तरह पीसकर कपड़ेमें रखकर सबका रस निचोड़ लें। रसके बराबर मीठा तिल्लीका तेल मिलाकर अग्निपर चढ़ा दें। रस जलकर केवल तेल रह जाय, तब उसे उतारकर, छानकर शीशीमें भरकर रख लें। इस तेलको कानमें डालनेसे कानका मवाद बहना, फुन्सी, तड़फन आदि बंद हो जाता है। इसे बेचे नहीं।

—जयनारायण ज्योतिषी, पो० नयी सराय, जि० गुना (म० प्र०)

५

बालकोंके मस्से

बालकोंके हाथ-पैरोंमें प्रायः मस्से पैदा होकर उन्हें कुरूप बना देते हैं। इसकी अचूक ओषधि है—'चिरायता'। चिरायता दो प्रकारका होता है—गाँठिया और बाँसिया। गाँठिया विशेष उपयोगी है। पंसारियोंके यहाँ मिलता है। वैसे तो यह कई रोगोंको दूर करता है, पर मस्से तो पाँच-सात दिनके सेवनसे ही सूखकर पपड़ी बनकर गिर जाते हैं। विधि यह है—आधा तोला चिरायता कूटकर, कपड़छानकर चूर्ण बना ले और शहद मिलाकर उसकी चनेके बराबर गोलियाँ बना ली जायँ। प्रातः शौचादिके बाद ४-५ गोली प्रतिदिन सेवन करा दें। बालक सरलतासे निगल सकते हैं। ओषधि-सेवनके समय तेल, लालमिर्चका परहेज रक्खें। इसका प्रयोग अनेक बार शत-प्रतिशत सफल हुआ है। चिरायता शब्द 'चिरायुत्व' (लंबी आयु) का अपभ्रंश है। इसके प्रयोगसे सब लाभ उठावें।

—देवीप्रसाद तिवानी, पो० सूलिया, बाया भवानी मंडी, (झालावाड़) (राजस्थान)

६

आंधासीसीपर प्रयोग

आंधासीसी बड़ा पीड़ादायक रोग है। इसका लक्षण है प्रातःकाल होते ही आधे सिरमें भयानक दर्द होने लगना। एस्प्रो, सेरीडोन आदि दवाओंसे पीड़ा एक बार दबती है, पर रोग नहीं जाता। इसका एक टोटका है, जिसे सभी कर सकते हैं। रोगी सुबह हाथमें एक गुड़का ढेला लेकर चौराहेपर जाय और चौराहेपर जाकर दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके गुड़के ढेलेको दाँतोंसे काटकर वहीं फेंक दे। इस टोटकेसे दो ही मिनटमें दर्द एकदम चला जाता है। मेरा परीक्षित है।

—दुर्गादत्त सिगोदिया, बागला उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, चूरू (राजस्थान)

तीन नयी पुस्तकें ! *प्रकाशित हो गयीं !!*

श्रमण नारद

[लोकसेवा-व्रतकी एक आदर्श कथा]

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य .१५ पैसे, डाकखर्च .१० पैसे।

मूल पुस्तक किन्हीं बौद्ध महानुभावद्वारा पाली भाषामें लिखी गयी थी। इसका अंग्रेजी अनुवाद श्रीपाल चारस (Paul Carus) नामक एक बौद्धधर्मके प्रेमी सज्जनने किया। पुनः श्रीफतेहचन्द कपूरचन्द लालन महाशयने इसका गुजराती अनुवाद, श्रीनाथुरामजी प्रेमीने हिंदी अनुवाद, श्रीपद्मावती देसाईने गुजराती अनुवाद और श्रीश्यामजी गणात्राने हिंदी अनुवाद किया। प्रस्तुत पुस्तक उसीका संशोधित संस्करण है। पुस्तककी छोटी-सी आख्यायिका बहुत ही शुभ प्रेरणादायक है। अतएव इस पुस्तकका विशेषरूपसे प्रचार होना चाहिये।

श्रीरुद्रगीत

आकार २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य .६ पैसे, डाकखर्च .१० पैसे।

श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धका 'श्रीरुद्रगीत' प्रसिद्ध है। इसका भगवद्भक्ति, ज्ञान आदिके साधनके रूपमें तो सदा प्रयोग होता ही है—संतानप्राप्ति, विपत्तिनाश, शुभ मनोरथकी पूर्ति तथा गृह-कलह-नाश आदि कार्योंकी सफलताके लिये भी इसका पाठ किया-कराया जाता है और उससे बहुत लाभ होता है। बहुत-से सज्जनोंके आग्रहसे इसको पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, श्रद्धालु जनता इससे समुचित लाभ उठायेगी।

OM

Śrīmad Bhagavadgītā

[With Sanskrit text and English translation]

Size Double crown 1/8, Pages 836, Multi-Coloured Pictures 4, Price Rs. 8.00, Postage 2.15, total Rs. 10.15.

The Gītā is read all over India with great reverence and love as it contains divine words emanating from the lips of Lord Śrī Kṛṣṇa, one of the two most popular Avatars, who lived amongst us thousand of years ago but have left an indelible impression on our lives. In our translation we have tried to reproduce the meaning of the original as possible so as to enable the reader to follow the text word by word, and a valuable explanation has been given on each verse fairly.

कल्याणकारी आचरण

[जीवनमें पालन करने योग्य]

गताङ्कमें ३२ पृष्ठ १५ पैसे मूल्यकी इस पुस्तिकाकी सूचना छपी थी। यह इतनी लोकप्रिय हुई तथा उपयोगी समझी गयी कि कुछ ही सप्ताहोंके अंदर बीस हजार प्रतियोंका दूसरा संस्करण छापना पड़ा। कई सज्जनोंने तो इसकी एक-एक हजार प्रतियाँ खरीदकर बिना मूल्य वितरण की हैं। अब लोक-कल्याणार्थ एक हजार या अधिक प्रतियाँ (वितरणार्थ एक साथ खरीदनेवालोंके लिये प्रति हजार १५०) के स्थानपर कमीशन आदि अलग न काटकर केवल १२०) मूल्य लिया जायगा। रेलपारसलसे स्टेशन तककी फ्री डिलेवरी होगी। (डाकखर्च आदि अलग।) चाहनेपर उनका नाम-पता भी छाप दिया जाता है। जिनको वितरणार्थ एक हजार या अधिक प्रतियाँ खरीदनी हों, वे महानुभाव पत्र लिखनेकी कृपा करें।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

रजि० सं० एल्० १७५

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा निवेदन

१–'कल्याण'का यह ४३वें वर्षका दसवाँ अङ्क है। ग्यारहवाँ और बारहवाँ अङ्क और निकलनेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४४वें वर्षका प्रथम अङ्क 'अग्निपुराणाङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। पुराणोंमें अग्निपुराणका मुख्य स्थान है। इसमें अनेक विषय हैं। इसे 'ज्ञानका विश्वकोष' कहा जाता है। इस पुराणका पूरा अनुवाद इस अङ्कमें रहेगा। स्थान-स्थानपर उपयोगी टिप्पणियाँ भी रहेंगी। बहुत उच्चस्तरके विद्वानोंद्वारा इसका अनुवाद तथा सम्पादनकार्य हो रहा है। सुन्दर चित्रोंकी भी व्यवस्था की जा रही है। यह अङ्क सभी प्रकारके पाठकोंके लिये बहुत उपयोगी होगा।

२–खर्च बहुत अधिक बढ़ जानेपर भी 'कल्याण'का मूल्य पूर्ववत् रु० ९.०० (नौ रुपये) ही रक्खा गया है, जो वास्तवमें बहुत कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरके द्वारा तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर-फार्म इसके साथ भेजा जा रहा है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें।

३–ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक अवश्य बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्‌की सेवा होगी।

४–जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण-कार्यालय'को हानि न सहनी पड़े।

५–किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल विशेषाङ्क और उसके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) है।

६–इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है।

७–'अग्निपुराणाङ्क'में स्थानाभावसे लेखनसामग्री बहुत कम रहेगी और बहुत-से लेख आ भी गये हैं। अतः कोई सज्जन बिना माँगे लेख, कविता आदि कृपया न भेजें। विवशताके लिये क्षमा करें।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**